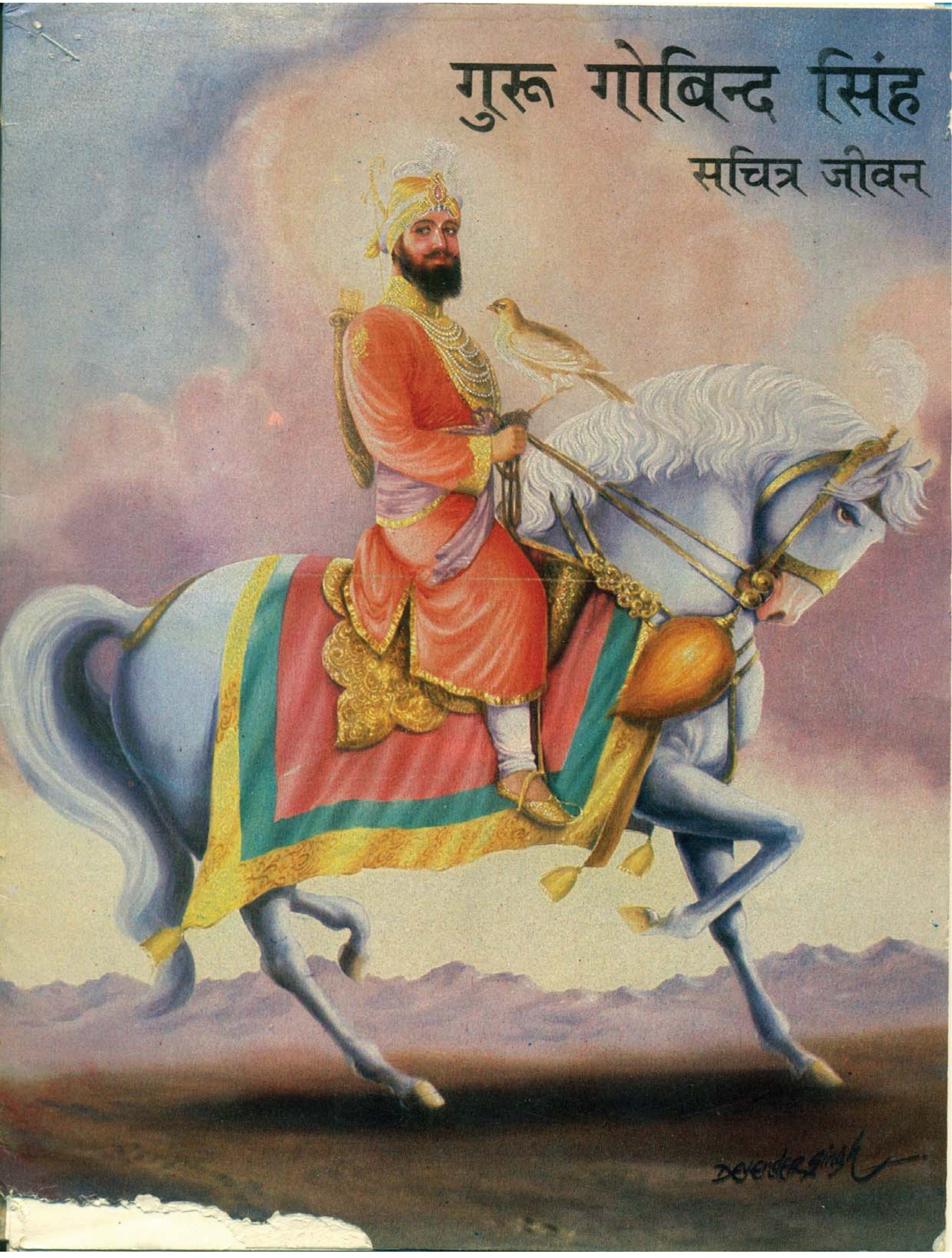
गुरू गोबिन्द सिंह

सचित्र जीवन



गुरू गोबिन्द सिंह

सचित्र जीवन

बलदेव सिंह बल

सिरजना प्रैस, नई दिल्ली, चण्ड़ीगढ़

प्रकाशक : **सिरजना प्रैस,**
45 चांद नगर, नई दिल्ली-110018
प्रिन्टर : मिनी प्रिन्टरज़, नई दिल्ली-110027
मूल्य : तीस रूपये

पटना साहिब की धरती
के
नाम

इसी कलम से और पंजाबी पुस्तकें :

–मिट्टी मेरे वतन दी (कहानी संग्रह)

–हक पराया (नॉवल)

–शहीद करतार सिंह सराभा (जीवनी)

–शहीद ऊधम सिंह (जीवनी)

–सिख धर्म : संक्षेप जान-पहिचान

–आख़री रात (नॉवल)

विरासत

सिख धर्म के प्रणेता गुरू नानक देव जी का जन्म 1469 ई. में हुआ था। 1496 ई. में उन्होंने 'न कोई हिन्दु, न कोई मुसलमान' का उपदेश दिया। उनका सारा जीवन मानवता और न्याय के लिये, अत्याचारी और अन्याय के खिलाफ संघर्ष को बढ़ावा देने में ही बीता।

अपने जीवन काल में गुरू नानक देव ने चार उदासियों (यात्राओं) के दौरान एशिया महाद्वीप के लगभग सभी देशों में जाकर धर्म के नाम पर भ्रम में पड़े हुए लोगों को सत्य की राह दिखाई।

गुरू नानक देव जी पहले धार्मिक नेता थे, जिन्होंने जन-साधारण की पीड़ा और वेदना को अपने वाणी (वचनों) के माध्यम से प्रकट किया। धर्म के नाम पर होने वाली लूट खसोट का विरोध किया। शासकों के अत्याचारों के खिलाफ आवाज बुलंद करते हुए उन्होने कहा "राजे चुली-नियाव की" अर्थात् न्याय करना राजा का धर्म और कर्तव्य है। समाज में नारी जाति के साथ होने वाले भेद-भाव पूर्ण व्यवहार का विरोध किया और नारीजाति के लिये अपमान जनक शब्दों के व्यवहार का निषेध किया और कहा "मनुष्य को पैदा करने वाली जननी - नारी की निन्दा करने वाले भी नारी की ही कोख से पैदा हुए हैं।"

ऊंच नीच, जात पात, जनम और धर्म के बंधनों में पड़ी मनुष्यता को वरीयता देकर गुरू नानक देव जी ने एक अकाल पुरुष की पूजा का उपदेश दिया। सारे मनुष्यों के हृदयों में एक ही ज्योति प्रकाशमान है इसलिये न तो कोई ऊंचा है, और न कोई नीचा। गुरू नानक देव जी ने सभी मनुष्यों के बीच जाति, पाति, और धार्मिक भेद-भाव से ऊपर उठकर साझें भाईचारे की नींव रखी, जो बाद में सिख धर्म के रूप में प्रकट हुई।

दूसरे गुरू अंगद देव जी 1539 में गुरू गद्दी पर बैठे। उन्होंने अपने गुरू काल में सिख मत का प्रचार और प्रसार करने के लिये संस्कृत के देववाणी होने के भ्रम को तोड़ा। लोक भाषा (पंजाबी) की लिपि गुरूमुखी के रूप को संवार और सुधार कर पंजाबी भाषा में गुरू नानक देव की वाणी और जीवन वृतांत को लिखवा कर प्रचारित किया। लोक भाषा में अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करवा कर, जन-सधारण को पंडितों के बंधनों से मुक्त किया। पंजाबी बोली, सिख धर्म के प्रचार का एक बहुत ही सशक्त माध्यम बन गई।

तीसरे गुरू अमर दास जी ने अपने गुरू काल (1522-1575) में सिख धर्म को एक संस्था का रूप और आकार देकर उसमें निखार पैदा किया। उन्होंने भारत भर में मुख्य मुख्य स्थानों पर सिख धर्म के प्रचार केन्द्र (मंजियां) स्थापित किये। सिखों में ऊंच नीच का भेदभाव मिटाने के लिये लंगर (एक साथ बैठकर भोजन करने) और संगत (एक साथ बैठ कर सत्संग करने) की परम्परा कायम की। सिखों के बीच सती प्रथा को खत्म कर दिया।

चौथे गुरू राम दास जी 1574 में गुरू गद्दी पर विराजमान हुए। सिख शक्ति को केन्द्रित करने के लिये, उन्होंने अमृतसर शहर की स्थापना 1577 में की जो आज कल श्री अमृतसर साहब के नाम से प्रसिद्ध है (अमृत सरोवर) पहला सुधा सर (अमृतसर) बनवाया जिसमें डुबकी लगाकर मनुष्य अपनी क्षुद्रता और हीन भावना भूल जाते थे। यही अमृतसर बाद में सिखों का प्रमुख केन्द्र बना।

गुरू राम दास जी ने आनन्द कारज (सिख-विवाह पद्धति) की परम्परा आरंभ की, और वेद मंत्रों के स्थान पर उच्चारण की जाने वाली रचना 'लावां' की सृजना की।

पांचवे गुरू अर्जुन देव जी ने अपने गुरूकाल में सिख मत को हिन्दू विचारधारा से प्रथक करके एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने सार्वजनीन, सब के साझे सरोवर के बीच में सार्वजनीन, सब के साझे मंदिर (हरि मंदिर साहिब) की नींव हिन्दू परम्परा के विपरीत, उस समय के प्रसिद्ध सूफी संत पीर साई मियां मीर से डलवाई। इस धर्म मन्दिर के चारों दिशाओं में चार दरवाजे जो चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों) और चारों धर्मों (हिन्दु, मुसलमा, सिख और ईसाई) के लिये खुले रहते थे।

सिख मत को प्रामाणिक रूप देने के लिये पहिले गुरूओं और बारहवीं सदी के शेख फरीद से लेकर उस समय तक के पीरों, फकीरों, हिन्दू भक्तों और शूद्र होने के कारण, अपमानित किये गये, महापुरुषों की उन वाणियों को जो गुरूओं के सिद्धान्तों के अनुरूप थीं, आदिग्रन्थ में सम्पादित किया।

सब के साझे सरोवर के बीच चारों वर्णों के लिये, सब के साझें मन्दिर के अन्दर सब की साझीं वाणी के स्वरूप आदि ग्रन्थ की स्थापना, सारी मानवता की एकता की प्रतीक बन गई। यह बात उस समय के शासक को अच्छी नहीं लगी। बादशाह जहांगीर ने अपनी आत्मकथा, तौजिके जहांगीरी में गुरू घर को झूठ की दूकान (दुकाने बातिल) लिखा। इसको बंद करने के लिये, गुरू अर्जुन देव का वध (शहीद) करवा दिया। गुरू अंर्जुन देव की शहादत सिख धर्म में एक ऐतिहासिक मोड़ का कारण बनी।

छठे गुरू हरगोबिन्द जी ने गुरू पिता के अन्तिम आदेश के अनुसार शस्त्र धारण

किये। मीरी और पीरी की प्रतीक दो तलवारों को धारण करके सिख धर्म में भक्ति एवं शक्ति का समन्वय कर दिया। सिखों की स्वतंन्त्र अस्तित्व के प्रतीक "श्री अकाल तख्त साहिब" को हरि मन्दिर के सामने स्थापित करके, धर्म और राजनीति के अटूट संबंध को प्रकट कर दिल्ली तख्त को चुनौती दी।

सिख शक्ति को संगठित करके एक ऐसी सेना तैयार की जिसने तत्कालीन मुगल शासकों से लोहा लेकर उनके मन में जगे हुए अजेय होने के भ्रम को तोड़ा।

सातवें गुरू हरिराय जी ने, शासन के प्रभाव में आकर गुरू बाणी के गलत अर्थ लगाने के कारण, अपने बड़े पुत्र रामराय को सिख पंथ से बहिस्कृत कर दिया और "बाणी गुरू, गुरू है बाणी" के सिद्धान्त को परिपक्व किया।

आठवें गुरू हरिकिशन जी ने अपने बालकाल में ही अपने बड़े भाई के स्थान पर गुरू गद्दी के उत्तराधिकारी होने के दावे से विरुद्ध राज दरबार में उपस्थित होने से इन्कार करके गुरू-घर की श्रेष्ठता और उच्चता कायम की।

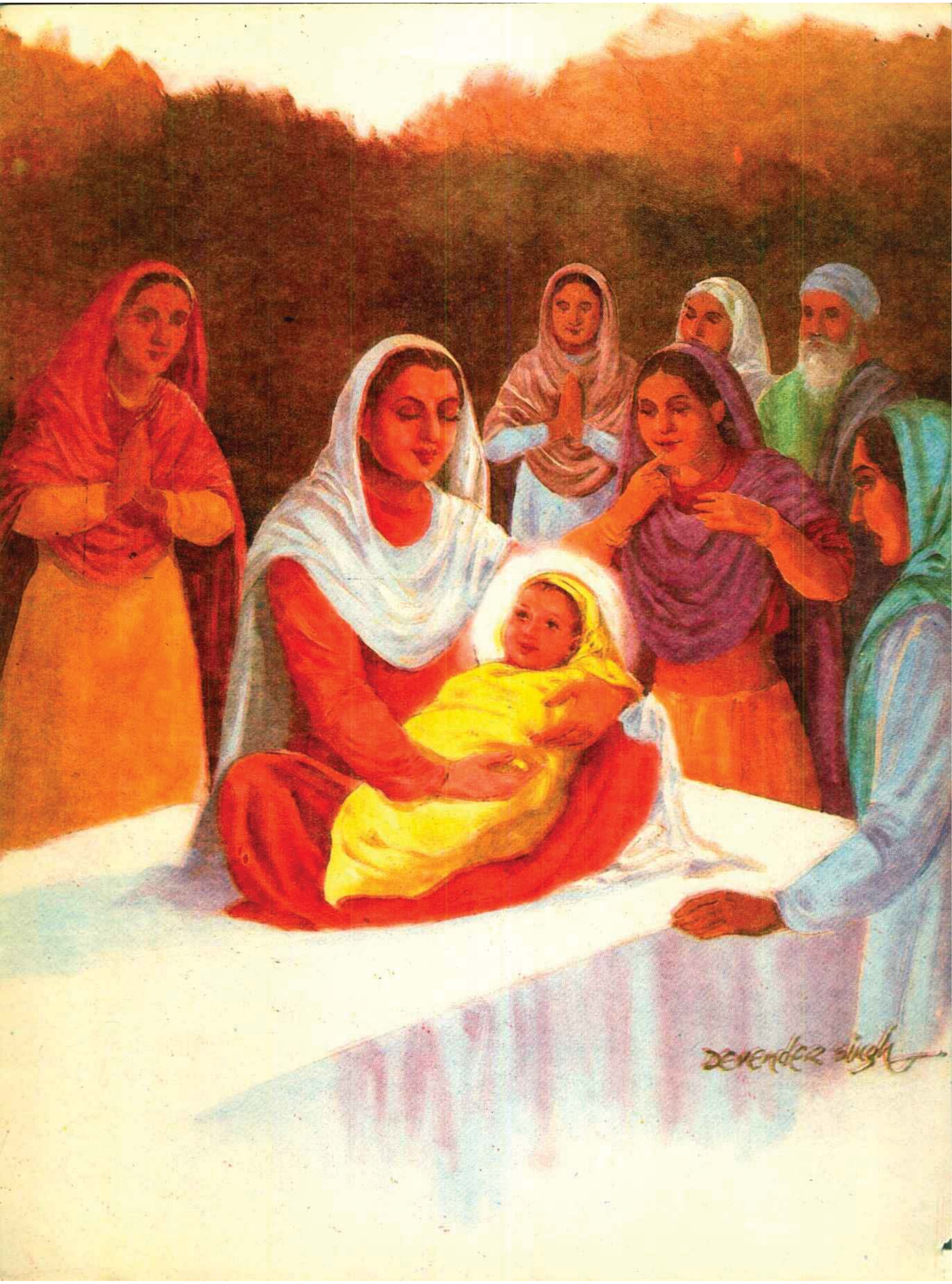
नवें गुरू तेगबहादुर ने मानव जाति के अधिकार तथा धार्मिक स्वतंत्रता के लिये अपना शीश बलिदान करके औरंगजेब के सारे हिन्दुस्तान को दारुल-इस्लाम बनाने के स्वप्न को भंग कर दिया।

सिखों के दसवें और अन्तिम गुरू गोबिन्द सिंह जब गुरू गद्दी पर बिराजमान हुए तो उस समय तक योजना बध तरीकों से मनोवैज्ञानिक आधार पर, पिछले पौन दो सौ साल से एक निश्चित आदर्श की ओर अग्रसर सिख धारा धर्म का रूप ग्रहण कर चुकी थी।

गुरू गोबिन्द सिंह ने सिख धर्म के प्रणेता, गुरू नानक देव जी के मानवतावादी और मानव-मानव के बीच समानता के आधार पर आपसी भाईचारे के सिद्धान्त को वास्तविक रूप दिया। 1699 ई. में खालसा पंथ की स्थापना करके उन्होंने उस सत्य का अनुसरण करने वाले व्यक्तित्व का सृजन किया, जिसका संकल्प आदि गुरू गुरू नानक देव ने लिया था।

इस महान विरासत के धनी गुरू गोबिन्द सिंह का जीवन महानता का उच्च शिखर था, जिसे इससे पहले शायद किसी ने स्पर्श किया हो। विदव्ता, शूर वीरता, बलिदान और सामाजिक निर्माण के संबंध में गुरू गोबिन्द सिंह की कोई तुलना नहीं। भविष्य में भी शायद ही कोई मुनष्य उनकी उच्चता को पहुंच पाये। इस बात का निश्चय पाठक, गुरू गोबिन्द सिंह की यह संक्षिप्त जीवनी को पढ़कर ही कर सकेंगे।

बलदेव सिंह बल


Devender Singh

गुरू गोबिन्द सिंह का जन्म 26 दिसम्बर 1666 ई. में पटना में हुआ था। पटना, वर्तमान भारत के बिहार राज्य की राजधानी है। गुरू गोबिन्द सिंह जी का जन्म स्थान होने के कारण आदर से इसको पटना साहिब के नाम से पुकारा जाता है।

सिखों के पांच तख्तों में से पटना साहिब, सिखों का दूसरा महत्वपूर्ण तख्त है।

सिख धर्म के प्रणेता, गुरू नानक देव जी अपने मत का प्रचार करते हुए 1509 ई. में यहां आये थे। उस समय इस नगर का नाम पाटलिपुत्र था। गंगा नदी के किनारे बसा हुआ, यह नगर एक बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था।

यहां का धनवान जौहरी, चौधरी सालस राय गुरू जी का पहला सिख बना। गुरू जी ने कई महीने उस की हवेली में ठहर कर सिख मत का प्रचार किया। इस कारण यह हवेली संगत का रूप धारण कर गई। चौधरी सालस राय की हवेली पहले संगत, फिर धर्मशाला और नवें गुरू तेगबहादुर के गुरू-काल के समय गुरूद्वारा बन गई। उस समय पटना पूर्वी भारत में सिखधर्म का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। गुरू तेगबहादुर मई 1666 ई. में सिख मत के प्रचार के लिये आसाम और बंगाल जाते हुए गुरू परिवार को यहीं छोड़ गये। इस हवेली मे माता गूजरी की कोख से बाल गोबिन्द ने जन्म लिया।

अपने पुत्र के जन्म की खबर उन्हें ढाके में मिली। ढाका वर्तमान बंगला देश की राजधानी है। गुरू जी ने पुत्र की प्राप्ति के लिये अकाल पुरुष को धन्यवाद दिया। पटना की संगत को बधाई और आशीर्वाद के हुकुमनामे में उन्होंने पटना को 'गुरू का घर' कहा और नये पैदा हुए बालक का नाम गोबिन्द रखने का आदेश दिया।

बाल गोबिन्द सिख संगत की आंखों का तारा था। शाम, सवेरे हवेली में जुड़ने वाली संगत बाल गोबिन्द को बड़ा लाड़ प्यार करती थी। बहुत ही अच्छे कीमती वस्त्र और बढ़िया खिलौनें बाल गोबिन्द के लिये लाये जाते। आस पास के इलाकों के सिख संगत के लोग, दर्शन करने, बधाई देने और शुभ सगुन के लिये आते रहते थे, इसलिये हवेली में हर समय चहल पहल बनी रहती थी।



पीर भीखन शाह जिनकी रियासत खुराम स्यान गुरू नगरी माखोवाले के नजदीक ही थी, गुरू तेगबहादुर के मित्र तथा श्रद्धालु थे। उन्हीं दिनों वे इस इलाके में अपने मुरीदों के पास ठहरे हुए थे। बाल गोबिन्द के जन्म की खबर सुन कर वह अपने मुरीदों के साथ, गुरू परिवार को बधाई देने आये थे। उस समय की परम्पराओं के अनुसार उन्होंने बाल गोबिन्द को सगुन स्वरूप कुछ स्वर्ण मुद्रायें और मिश्री से भरे हुए दो कुज्जे[2] भेंट किये।

बाल गोबिन्द उस समय तक हाथ पैर चलाने लायक हो गया था। उसके अपने दोनों हाथों से मिश्री भर कुज्जों को पकड़ लिया। बाल गोबिन्द की मजबूत पकड़ देखकर, पीर जी बहुत ही खुश हुए। उन्होंने बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया, फिर उसका माथा चूम कर, आशीर्वाद दिया "खुदावन्द करीम मेहर करे और दोनों लोकों में तेरी पकड़ मजबूत हो"।

बाल गोबिन्द का पालन पोषण राजकुमारों की तरह हुआ, बाल गोबिन्द की देखभाल के लिये सेवकों की कमी नहीं थी।

ज्यों ज्यों बाल गोबिन्द थोड़ा थोड़ा सज्ञान होता गया, तो उसे गुरू-घर की परम्पराओं को समझाने का प्रयत्न किया जाने लगा। उसे संगत के बीच जाने, माथा टेकने, दरबार में पलथी मार के बैठने और गुरू बाणी को कंठस्थ करने का अभ्यास कराया जाने लगा। बाल गोबिन्द की स्मरण शक्ति और हर कार्य को सीखने की उत्सुकता को देखकर लोग ताजुब करने लगते। जब वह अपनी तोतली जुबान में जपुजी साहिब का पाठ करने लगा, तो उसकी दादी मां नानकी जी बहुत ही प्रसन्न हुई और लोगों में मिठाई बांटी गई।

बहुत दिनों की इच्छा के बाद प्राप्त अपने पोते के बिना दादी नानकी पल भर न रह पाती। सिख सेवकों को आदेश था, कि वे बाल गोबिन्द की पूरी देखभाल करें। इसलिये बाल गोबिन्द के आगे पीछे दो एक सिख सेवक घूमते ही रहते थे। दादी नानकी की यही कोशिश रहती, कि बाल गोबिन्द सदा उनकी नजरों के सामने ही रहे। किन्तु बाल गोबिन्द सब की नजरों से बचकर अपने बाल सखाओं के साथ खेलते खेलते दूर तक निकल जाता। कभी कभी तो वह सारा दिन घर के बाहर ही रहता। सायं काल ही घर पहुंचता।

दादी नानकी दिन भर के बाद बाल गोबिन्द को पाकर उसे अपनी गोदी में बिठाकर लाड प्यार करती रहती। हर बच्चे की तरह बाल गोबिन्द को भी कहानी सुनने का बड़ा चाव था। दादी की गोद में बैठने के बाद, बाल गोबिन्द जोर जोर से बोलने लगता, "दादी जी कहानी सुनाओ"

दादी जी, कभी उसे, उसके पिता गुरू तेगबहादुर, कभी उसके दादा गुरू हर गोबिन्द

साहब की बहादुरी की कहानियां सुनाती और कभी उसे उसके परदादा श्री गुरू अर्जुन देव द्वारा बनवाये गये विलक्षण धर्म स्थान श्री हरिमन्दिर, जिसके चारों तरफ चार दरवाजे, चारों वर्णों के लिये सदा खुले रहते हैं, की बातें बतातीं। और कभी शासकों द्वारा उसके परदादा गुरू अर्जुन देव को यातनायें दे दे कर बध (शहीद) करने की कथायें भी सुनाती।

दादी जी ने ही उसे बातों बातों में बताया कि उसके पिता का नाम पहले त्याग मल था। पर करतारपुर के युद्ध में उन्होंने जिस शूरवीरता से युद्ध किया और तलवार चलाई, यह देखकर गुरू पिता हरगोबिन्द साहब ने खुश होकर उस दिन उनका नाम तेगबहादुर रख दिया।

दादी जी से कहानियां और साखीयां सुनते सुनते बाल गोबिन्द को नींद आने लगती। जमुहाइयां लेते लेते वह दादी जी की गोद से निकल कर माता गूजरी की गोद में जा लेटता।

गुरू परिवार के आने के बाद सालस राय की हवेली में हर समय संगतों की चहल पहल बनी रहती थी। सवेरे शाम लोग इकटठे होते। नित्य नियम पूर्वक वाणियों का पाठ होता, कीर्तन और व्याखान होते। शूरवीरों की गाथायें गीतों में सुनाई जातीं। सभी सिख परिवारों के बच्चों के साथ ही बाल गोबिन्द को भी सज संवर कर दरबार के बीच हाजिर होना पड़ता था। दिन में कुछ समय, बाल गोबिन्द भिन्न भिन्न शिक्षकों से गुरूमुखी, संस्कृत और ब्रजभाषा का अक्षर ज्ञान हासिल करता और उसके बाद उसका सारा समय अपने बाल सखाओं के साथ खेलने में बीतता। शाम के समय दरबार के कुछ शस्त्र-बध सिख, जब नौजवानों को शस्त्र विद्या सिखाने के लिये अखाड़ा लगाते, तो बाल गोबिन्द उनकी नकल करते हुए वैसे ही कर्तव्य करने लगता। फिर अपने मामा कृपाल जी से कह कर बाल गोबिन्द ने एक छोटी तलवार, एक ढाल और एक छोटा सा तीर-कमान बनवा लिया।

बच्चों को खेल से अधिक कोई चीज़ प्रिय नहीं होती। एक दिन जब खेलने के लिये कोई चीज़ नहीं मिली, तो बाल गोबिन्द ने अपना सोने का कंगन उतार दिया खेलने को। गंगा के किनारे खेलते खेलते उसका सोने का कंगन गंगा में जा गिरा। जिस समय उसका कंगन गंगा नदी में गिरा गया, उस समय डर के मारे सभी लड़के भाग लिये। दौड़ते दौड़ते हांफने और डर से कांपते हुए बच्चों ने माता गूजरी को जा कहा गोबिन्द.....गंगा...गिर...गया। घबराई हुई माता गूजरी सिख सेवकों के साथ भागती भागती गंगा के किनारे आई। गंगा के किनारे गोबिन्द को सही सलामत देखकर, माता गूजरी की जान में जान आई।

बाल गोबिन्द को प्यार दुलार कर माता गूजरी ने पूछा " पुत्र क्या बात हुई ?"


DEVENDER singh

तो बाल गोबिन्द ने कंगन से रहित अपना हाथ दिखाया। माता ने फिर पूछा, तेरा कंगन कहां गिर गया तो बाल गोबिन्द ने दूसरे हाथ से भी कंगल निकाल कर गंगा में उसी जगह दूसरा कंगन, फेंक दिया, जहां पहला कंगन गिरा था।

माता गूजरी ने अपने इस अनोखे पुत्र को उठाकर छाती से लगा लिया। ●


DEVENDER Singh

दिनों दिन बाल गोबिन्द के मित्रों की संख्या बढ़ने लगी। शाम सवेरे दरबार मे बालकों की वजह से काफी चहल पहल रहती थी। बाल गोबिन्द को दरबार के बाद ही खेलने का मौका मिलता, इसलिये, बाल गोबिन्द के मित्र दरबार की समाप्ति तक दरबार में ही जमे रहते। दरबार की समाप्ति के बाद ही कड़ाह प्रसाद, और खाने पीने की अच्छी मिठाइयों तथा फल आदि वितरित किये जाते थे। बच्चे बड़ी बेसबरी के साथ दरबार की समाप्ति का इन्तजार करते। अपने बाल मित्रों से घिरकर बैठा बाल गोबिन्द, सिर पर सुन्दर पगड़ी बांधे हुए, रेशमी कपड़े पहने, कृपाण के साथ,, पलथी मार कर बैठा हुआ, सब का मन मोह लेता था।

पंडित शिवदत्त को बाल गोबिन्द में भगवान कृष्ण का रूप दिखाई पड़ता। भोला, भाला, नटखट गोपाल। नवाब करीम बख्श और रहीम बख्श को बाल गोबिन्द के चेहरे पे अल्लाह का नूर नज़र आता। राजा फतेहचन्द मैनी और उसकी रानी, जिनके कोई संतान नहीं थी, प्रतिदिन दरबार में आते और अति ही अनुरक्त हो कर उसकी ओर निहारते रहते।

एक दिन सहज स्वभाव बाल गोबिन्द रानी की गोद में जा बैठा। भगवान की कृपा से रानी की कोख हरी हो गई। समय पर उसने पुत्र को जन्म दिया। उस दिन से राजा रानी दोनों ही बाल गोबिन्द की पूजा करने लगे। उसके मुंह से निकली हुई हर बात को वे पूरा करते। उनके महलों के दरवाज़े बाल गोबिन्द और उसके साथियों के लिये सदैव खुले रहते।

गुरू परिवार की सुख सुविधा के लिये नवाब भाइयों ने अपना एक गांव और एक बाग, गुरू परिवार को सौंप रखा था। जहां की सिख संगत भी गुरू परिवार कीं सुख सुविधा का पूरा ध्यान रखती थी।।

गरमी के मौसम में बाल गोबिन्द और उसके दूसरे साथी बाग की ठंडी छांव में नित नये नये खेल खेलते रहते। लुका छिपी, निशाने बाजी, कुश्ती, नकली युद्ध और गतके बाजी। खेलों के खतम होने के बाद बाल गोबिन्द दरबार संजाता, जीतने वालों को इनाम बांटता। ये इनाम गुरू दरबार में चढ़ावे के रूप में आई हुई अच्छी से अच्छी वस्तुएं होती।

एक दिन शाम के समय बाल गोबिन्द के साथियों को टोली घर को लौट रही थी। राह में ही कोतवाल की सवारी आ गई। बच्चों ने कोतवाल की कोई परवाह नहीं की।

कोतवाल की ओर देखे बिना ही वे रास्ता पार कर गये। कोतवाल के साथ चल रहे सपाहियों को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने बच्चों को घेरकर कोतवाल की सवारी के पास ला खड़ा किया और ऊंची और सख्त आवाज में बच्चों से कहा, " कोतवाल साहब को सलाम करो"।

कोतवाल के कर्मचारियों के बीच घिरे बच्चे घबरा गये। वे घबराकर एक दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे। सारे राहगीर कोतवाल को झुक झुक कर सलाम करके रास्ता पार कर रहे थे।

कोतवाल के कर्मचारियों ने बच्चों को गुम-सुम खड़े देखकर डांटते हुए फिर कहा, "सलाम करो।"

"नहीं करेंगे।" बाल गोबिन्द ने अकड़ कर जवाब दिया और उसके बाद हाथ के इशारे से अपने साथियों को आगे चलने के लिये कहा और आगे चल पड़े। कोतवाल के कर्मचारी, ज्यों ही बच्चों के समूह की ओर बढ़े वे कर्मचारियों को मुंह चिढ़ाकर भाग खड़े हुए।

पटने की गलियों, बाजारों में खेलते हुए बाल गोबिन्द के साढ़े पांच साल बीत गये। गुरू पिता आसाम और बंगाल के दौर से लौटते हुए कुछ दिनों के लिये पटना में रूके। पटने के बाद उन्हें माखोवाल जाना था। गुरू पिता के पटना आने पर ही बाल गोबिन्द ने पहली बार अपने पिता के दर्शन किये। गुरू पिता ने बाल गोबिन्द को बड़ा ही प्यार किया। बाल गोबिन्द उनकी गोद से उतरता ही नहीं था।

गुरू जी अपने परिवार और अन्य सिख सेवकों को पटने में ही छोड़ कर, कुछ चुनिंदा सिखों को साथ लेकर माखोवाल चले गये थे। गुरू पिता के जाने के बाद बाल गोबिन्द उदास सा रहने लगा।

कुछ समय के पश्चात ही गुरू परिवार को माखोवाल पहुंचने का बुलावा आ गया। पटने से विदा लेते समय बाल गोबिन्द तथा उसके साथियों की आंखों में आसूं तथा मासूम चेहरों में उदासी थी।

फरवरी 1672 ई. को पटना की संगतों से विदा होकर, गुरू परिवार एक काफिले के रूप में पंजाब की ओर चल पड़ा। एक इलाके की संगत दूसरे इलाके तक इस काफिले को विदा करने के लिये नंगे पावं जाती। रास्ते में पड़ने वाले गांवों, कस्बों और शहरों में गुरू-परिवार का बहुत ही शानदार स्वागत किया जाता। काफिले के साथ आने वाली संगतों के लियें तरह तरह के पदार्थ परोसे जाते। किसी भी इलाके में पहुंचने पर सब सिखों द्वारा इस बात का प्रयत्न किया जाता, कि गुरू परिवार के चरण उनके घरों में अवश्य पड़ें। परन्तु उस समय तक स्थापित परम्परा के अनुसार गुरू परिवार धर्मशाला और गुरूद्वारा में ही ठहरते थे। पर बाल गोबिन्द संगतों के बीच शामिल बालकों के साथ खेलता खेलता जिधर चाहता, उधर चला जाता।

कई स्थानों पर संगतों के प्रेम और सत्कार को देखते हुए कभी कभी निश्चित समय से एक दो दिन अधिक ही ठहरना पड़ जाता। गुरू परिवार के दर्शनों के लिये संगत के लोग मीलों पैदल चल कर आते। पता नहीं फिर कभी गुरू परिवार के दर्शन नसीब होंगे कि नहीं। उन दिनों यात्रा करना इतना कठिन तथा खर्चीला था कि कोई विरला ही गुरू-दर्शनों के लिये पंजाब जाने की हिम्मत करता। अभी तो गुरू-परिवार के दर्शन सहज ही मिलते थे। इलाके की संगतों के लोग बड़े उत्साह से दशनार्थ आते। गुरू परिवार की प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिये दिन रात सेवा करने में लगे रहते। इलाके के प्रसिद्ध कीर्तन करने वाले, कथाकार, और प्रचारक गुरू दरबार में अपनी हाज़िरी देकर संगतों को प्रसन्न करते। बाल गोबिन्द के कौतुक देखकर संगतों के लोग फूले नहीं समाते थे। फिर गुरू परिवार का यह काफिला आगे चल पड़ता। अगले इलाके की संगत स्वागत के लिये उमड़ पड़ती। रास्ते में कई प्रसिद्ध तीर्थ स्थान आये। इन स्थानों में पूर्ववर्ती गुरूओं की याद में बनाये गुरूद्वारों में संगतों के इकट्ठ को देख कर सब दंग रह जाते। बनारस, जो उस समय भी हिन्दु मत का प्रसिद्ध केन्द्र माना जाता था, यहां पर सिख धर्म का इतना प्रभाव सब के लिये आश्चर्य का विषय बन गया। बनारस के पंडितों की विद्वत्ता का लोहा सारा देश मानता था। परन्तु उनके नगर में सिख संगतों का ऐसा जमाव हुआ, वैसा तो रास्ते में किसी भी जगह नहीं हुआ था।

ब्राह्मण सिख मत को सदा आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे क्योंकि सिख गुरूओं ने हिन्दू मत द्वारा स्थापित मूल्यों की कभी परवाह नहीं की। किन्तु गुरू-धर के प्रति दिन

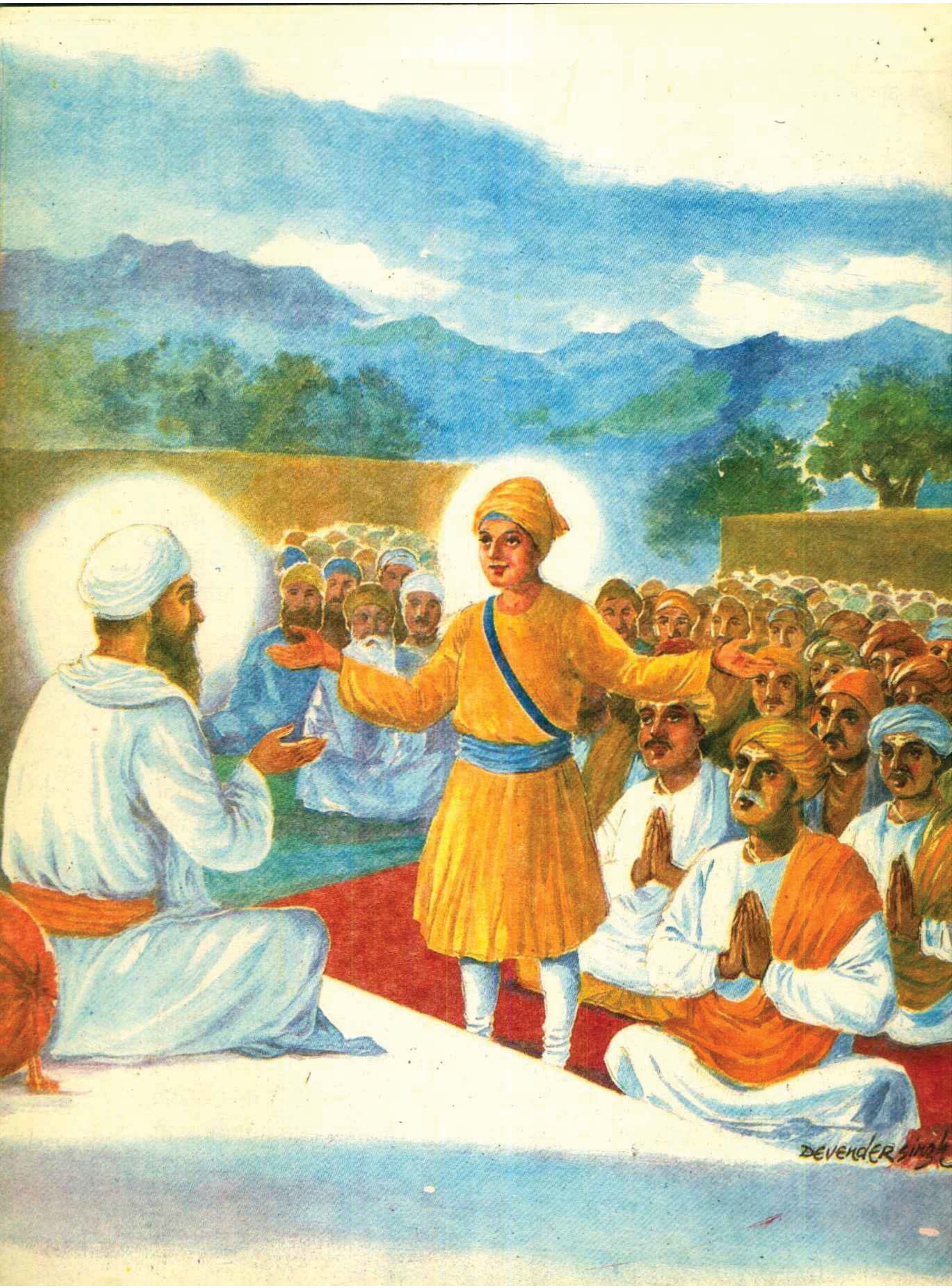
बढ़ते प्रभाव से वे काफी चिन्तित थे। क्योंकि गुरू-धर ने ऊंच नीच, जात, पात, जन्म और धर्म के सभी भेद मिटा दिये थे। नीची जातियों के लोगों के वचन भी आदि ग्रन्थ में होने के कारण, वेदों और धर्मग्रन्थों की तरह सम्मानित किये जाते थे। गुरू-घर में किसी को भी न तो नीच कहा जाता, न किसी को नीच माना जाता। इस कारण समाज का एक बहुत बड़ा भाग, पंडितों से विमुख होता जा रहा था।

बनारस के पंडितों ने परम्परा के अनुसार बाल गोबिन्द को पावन सूतमाला भेंट की। किन्तु बाल गोबिन्द ने, जो अब तक सिख परम्पराओं को जान चुका था, उस सूतमाला को लेने से इनकार कर दिया। पंडितों ने, जब बाल गोबिन्द को, वेद और शास्त्रों के उदाहरण देकर समझाने का प्रयत्न किया, तो बाल गोबिन्द ने कहा "हमारा वेद शास्त्र तो आदि ग्रन्थ साहब है"। उसके अलावा हम किसी को नहीं मानते। पांच छह साल के बच्चे की विद्वत्ता और स्पष्टवादिता से पंडितों के मुंह लटक गये।

अयोध्या, लखनऊ, मथुरा, वृन्दावन तथा हरिद्वार होते हुए यह काफिला छः महीने की यात्रा करके जुलाई के मध्य में लखनौर पहुंच गया। लखनौर जो अम्बाला से पश्चिम की तरफ आठ किलो मीटर की दूरी पर स्थित है बाल गोबिन्द के नाना का गांव था। किरपाल के बड़े भाई मेहर चन्द्र अधिकतर यहीं रहते थे।

उन दिनों जुलाई-अगस्त के महीनों में शिवालिक की पहाड़ियों पर काफी वर्षा होती थी। नदी, और नालों में इतना पानी चढ़ जाता था कि उनको पार करना मुश्किल होता था। उस समय नदियों पर पुल नहीं थे। जहां पर कम पानी होता था, वहीं से लोग नदी से इस पार या उस पार आया जाया करते थे। इस प्रकार के स्थानों को पतन कहा जाता था। इसलिये गुरू परिवार को बरसात में यहीं टिकने के लिये छोड़कर, किरपाल जी, माखोवाल की अगली यात्रा का प्रबंध करने के लिये चले गये।

गुरू परिवार जितने समय तक लखनौर में रहा, पीर भीखन शाह का मेहमान रहा। पीर जी बाल गोबिन्द को बहुत प्यार करते थे। रेशमी वस्त्र, कृपाण और कंधे मे तीर कमान। वह अमृत वेले में, बहुत ही सवेरे तैयार हो जाता। माता गूजरी के बगल में बैठकर नित्य नियम का पाठ करता। और जब माता जी अपने काम धंधों में लग जाती, तो वह अपने साथियों के साथ नकली युद्ध करने लगता। अपनी तीर कमान से निशाने साधता, अपनी छोटी कृपाण से वार करता ओर अपनी छोटी और अच्छी ढाल से वार रोकता। बाल गोबिन्द पीर जी को बहुत ही अच्छा लगता था। वे उसे कभी उठाकर अपनी छाती से लगा लेते और कभी कंधे पर बिठा लेते।


DEVENDER SINGH

बरसात खत्म हो गई। पहाड़ी नदी, नालों में जिस तेजी से पानी चढ़ा था, उसी तेजी से साथ उतर गया। गुरू परिवार जब माखोवाल पहुंचा, सारा शहर गुरू परिवार के स्वागत के लिये उमड़ पड़ा था।

ऊंचे ऊंचे पहाड़ों की गोद में, घने वृक्षों से घिरा यह शहर, बाल गोबिन्द को बहुत ही प्यारा लगा। कुछ दिनों में ही बाल गोबिन्द ने इस शहर के सभी गली, कूचे छान मारे। गुरू की नगरी में गुरू बाल का स्वागत प्रत्येक घर में राज कुमारों जैसा होता था।

उसकी उमर के साथी तथा कुछ समझदार बड़े लड़के उससे दोस्ती करने के लिये एक दूसरे से होड़ किया करते थे। शीघ्र ही बाल गोबिन्द के साथ खेलने वाले मित्रों की एक बड़ी फौज बन गई।

माखोवाल में पटने जैसी खेल कूद और घूमने की स्वंतत्रता नहीं थी। गुरू पिता ने बाल गोबिन्द की शिक्षा के लिये अलग अलग शिक्षकों का प्रबन्ध किया। पीर मुहम्मद साहब बाल गोबिन्द को फारसी, साहिब चन्द जी पंजाबी, और पंडित कृपा राम जी संस्कृत पढ़ाने के लिये नियुक्त किये गये। बजर राजपूत को बाल गोबिन्द को घुड़सवारी और शस्त्र विद्या में निपुन करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई।

बाल गोबिन्द एक बहुत अच्छा विद्यार्थी साबित हुआ। अपने शिक्षकों की शिक्षाओं पर बड़े उत्साह और चाव से अमल करता हुआ, वह सभी कुछ जल्दी ही सीख गया।

घुड़सवारी तथा तीरन्दाजी में तो कभी कभी वह अपने शिक्षकों को भी हैरान कर देता। जिस चाव के साथ उसने विद्या ग्रहण की, उसी चाव से उसने शस्त्र ज्ञान भी प्राप्त किया।

गुरू पिता अपने होनहार पुत्र का लाड़ प्यार करते नहीं थकते थे। बाल गोबिन्द लगभग छह साल पिता के प्रेम की छाया से वंचित रहा। इसलिए अब जब पिता का असीम स्नेह उसे प्राप्त हुआ, तो बाल गोबिन्द की सारी दुनिया पिता की गोद में ही सिमट गई।

गुरू जी महलों में हो या दरबार में, जब उसका जी चाहता, वह पिता की गोद में जा बैठता।

एक दिन रोज़ की तरह खेलता खेलता वह दरबार में बैठे हुए पिता की गोद में जब बैठा, तो हमेशा की तरह गुरू जी ने न तो उसका माथा चूमा,न पीठ पर हाथ फेरा। हैरान

होकर, बाल गोबिन्द ने पिता के चेहरे की ओर देखा। गुरू जी किसी गंभीर चिन्तन में मगन थे।

बाल गोबिन्द ने फिर सामने हाथ जोड़े खड़े हुए लोगों की ओर देखा। ये लोग अपनी वेश-भूषा से पंडित जान पड़ते थे। उनके माथे पर केसरी तिलक थे और गर्दन में जनेऊ साफ दिखाई पड़ रहे थे। ये लोग दरबार में पहले ही पहल आये लगते थे।

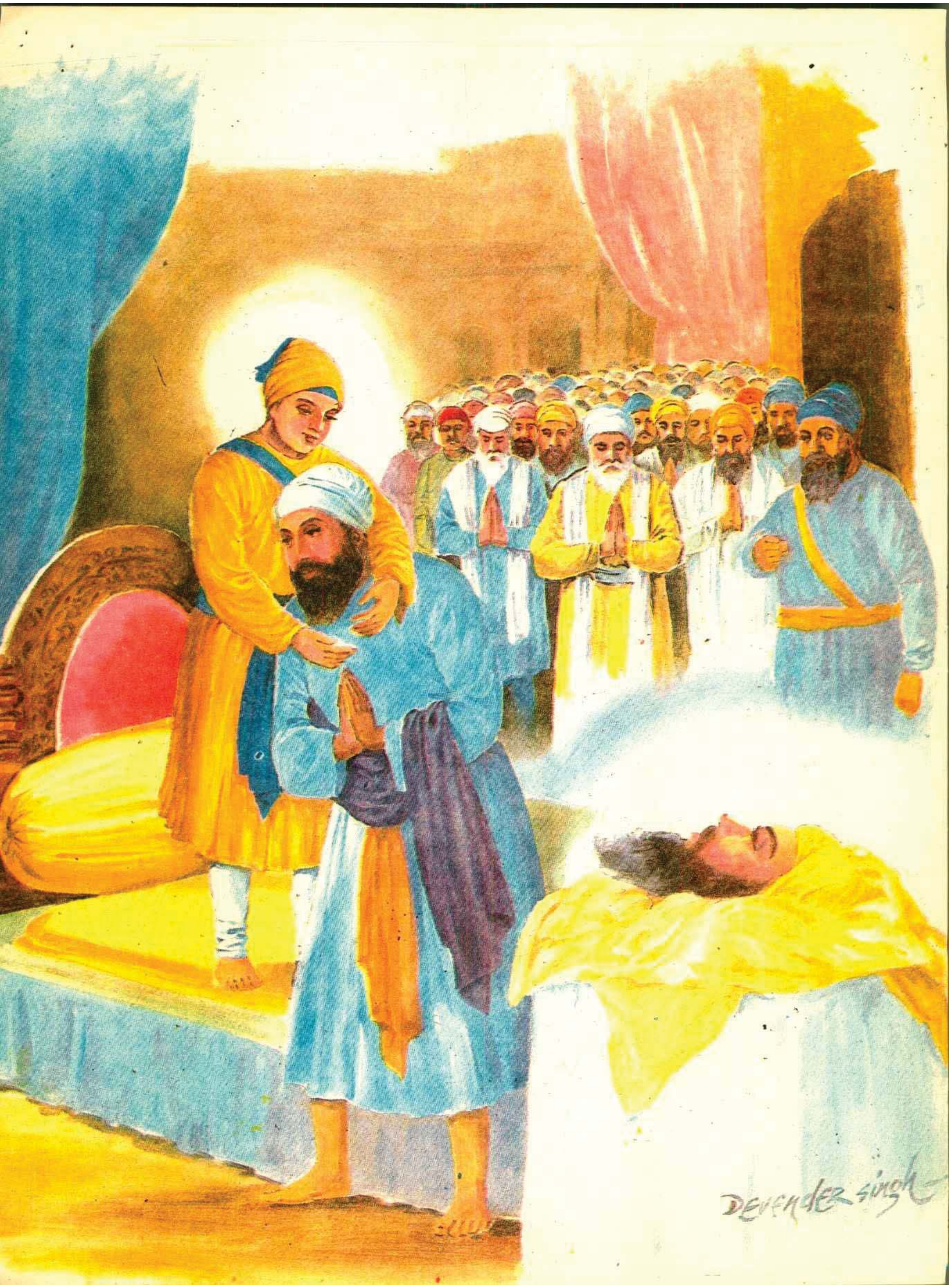
गुरू घर में हिन्दू धर्म में पवित्र समझी जाने वाली रीति और रिवाजों की कोई मान्यता नहीं थी। गुरू नानक देव जी ने बाल-अवस्था में ही हिन्दू जाति-वर्णज्ञ को प्रकट करने वाले जनेऊ को पहनने से इन्कार कर दिया था। ब्राह्मण की प्रमुखता और जाति-पाति की प्रथा को गुरू-घर ने कभी स्वीकार नहीं किया। कमीन और शूद्र समझे जाने वाले लोगों को बड़ा योद्धा बनाकर, गुरू हरगोबिन्द ने, केवल क्षत्रिय ही शूरवीर हो सकते हैं, इस भ्रम को तोड़ा। गुरू-धर में मूर्ति पूजा का खंडन तथा भिन्न भिन्न देवी देवताओं के स्थान एक अकाल पुरुष की पूजा होती थी। देवभाषा संस्कृत की जगह पर लोक-वाणी में गुरू अपना उपदेश देते थे। इसलिये पुजारी और ऊंचे कुल के लोग, गुरू-घर को अच्छी नजर से नहीं देखते थे। उनको गुरू-घर से कोई न कोई शिकायत हमेशा बनी रहती थी।

गोबिन्द ने सोचा आज ये लोग, फिर कोई शिकायत लेकर आये होगे।

लेकिन जब पंडितों में प्रमुख, कृपा राम ने, जो गले में पल्लू डाले हुए खड़ा था, बड़ी विनीत स्वरों में अपनी बात कही। "महाराज हमारी रक्षा करो। गुरू नानक देव के दर से कोई खाली हाथ नहीं लौटता। हमको शरण दीजिये और हमारे धर्म की रक्षा कीजिये। शासक हमारे तिलक मिटाने और जनेऊ उतारने पर तुले हुए हैं। तरह तरह के जुल्म करते हैं और कहते हैं कि अगर जान बचानी हो तो कलमा पढ़कर मुस्लमान हो जाओ। हम कहां जायें ? अब आपके बिना कोई शरण देने वाला नहीं।"

बाल गोबिन्द ने चिन्ता में डूबे हुए अपने गुरू पिता को झंझोर कर कहां 'पिता जी इन दुखी लोगों की फरियाद सुनें। इनकी सहायता करें"। आप किस सोच में पड़े हैं?

"इनकी सहायता करने के लिये किसी महान पुरुष को अपना शीश देना पड़ेगा। हे पुत्र ! मैं इसी सोच में पड़ा था।"


DEVENDER singh

"इसमें सोचने की कौन बात है ? आप से बड़ा महापुरुष कौन है? ये लोग जिसके पास जायें?"

गुरू तेगबहादुर ने नजर भर कर बाल गोबिन्द के चेहरे को देखा, जो उनकी गोद से निकल कर सामने खड़ा हो गया था नौ साल की उम्र में बाल गोबिन्द अपनी उम्र से बहुत अधिक सयाना लग रहा था। गुरू जी के चेहरे में खुशी की चमक आ गई। उन्होंने पंडितों से कहा " जाओ शासकों से कहो हमारे ऊपर जुलुम न करो। अगर नौंवा नानक (गुरू तेगबहादुर) इस्लाम कबूल कर ले, तो हम सारे अपने आप ही मुसलमान हो जायेंगे।" गुरू नानक के दर घर की जय जय कार करते हुए पंडित अपने घरों को वापस चले गये।


DEVENDER Singh-

दिल्ली दरबार में इस बात की खबर पहुंचते ही गुरू तेग बहादुर जी की गिरफ्तारी के आदेश जारी हो गये। गुरू जी भविष्य में आने वाली घटना से अनजान नहीं थे! बाल गोबिन्द को गुरू-गद्दी सौंप कर अपने तीन सेवकों, भाई मतीदास, भाई सतीदास और भाई दयाल दास के साथ दिल्ली की ओर चल पड़े। उनको रास्तें में ही पकड़ कर दिल्ली ले जाया गया।

कई दिनों के वाद विवाद के बाद, जब गुरू जी ने इस्लाम गृहण करने से मना कर दिया, तो उनकी ही आंखों के सामने, तरह तरह की यातनायें देकर उनके सिख साथियों का बध किया जाने लगा। भाई मतिदास को आरे से चीर कर दो फाड़ कर दिया गया। भाई सतीदास को रूई के बीच में लपेट कर ज़िन्दा जला दिया गया। भाई दयाल को उबलते पानी में उबाला गया। इस दौरान, गुरू जी को एक तंग पिंजड़ें में कैद करके रखा गया।

जब इन सारे जुल्मों को देखते हुए गुरू जी ने इस्लाम धर्म को गृहण करने से इनकार कर दिया, तो 11 नवम्बर 1675 को दिल्ली के चांदनी चौक[3] में लोगों की भीड़ के सामने, दिन दहाड़े उनका सिर कलम कर दिया गया और उनके शव (मृतक देह) की संभाल करने का प्रयत्न करने वाले मनुष्य के सारे परिवार को मार डालने का शाही फरमान जारी कर दिया गया।

जब भाई जैता जी, गुरू तेगबहादुर का शीश लेकर माखोवाल पहुंचे, तो उनको अपनी छाती से लगाकर गुरू गोबिन्द राय ने "रंगरेटे गुरू के बेटे" कहकर उनका सम्मान किया। भाई जैता जी से दिल्ली में हुए अत्याचारों और अन्यायों की कहानियां और दिल्ली के सिखों द्वारा दिखाई गई बुजदिली और कायरता की बातें सुनकर गुरू जी की मृकुटियां तन जातीं थीं।

नौ साल की उम्र में ही गुरू पिता का साया सिर से उठ जाने पर उनका बचपन पंख लगाकर उड़ गया था।

रोज सवेरे शाम दीवान सजते, लेकिन पहले जैसी रौनक नहीं थी। शासकों के अत्याचारों और भय के कारण कई कमजोर दिल सिख चुप चाप अपने घरों को वापस चले गये।

एक दिन दिल्ली से आये कुछ सिखों ने लक्खीशाह वन्जारे द्वारा अपना घर[4] फूंक कर गुरू जी के धड़ (बिना सिर मृतक शरीर) के दाह संस्कार की बात सुनाई, तो गुरू जी के उदास चेहरे पर एक चमक सी आ गई।

दिल्ली में हुए अत्याचारों के समाचार कानों कान सारे देश में फैल गये। दूर और नज़दीक से संगतों के लोग गुरू-परिवार के दुःख में शामिल होने के लिये आने लगे। बाल गुरू के चेहरे का तेज और शस्त्रधारी सिखों की चढ़त और उत्साह को देख कर कई सिखों ने जो अपने घरों को लौट जाना चाहते थे, अपना इरादा बदल दिया। गुरू जी इन नौजवानों को विशेष रूप से सम्मानित करते, उनके भोजन और सुख सुविधाओं का विशेष प्रबन्ध किया जाता। शस्त्र विद्या में प्रवीण व्यक्ति उन्हें शस्त्र-विद्या सिखाते। सिखों के लिये गुरू जी का आदेश था, कि कभी भी अपनी ताकत दिखाने के लिये या जुल्म और अन्याय करने के लिये हथियार नहीं उठाने । बल्कि कमजोरों और निराश्रय लोगों की रक्षा, दृष्टों और अत्याचारियों का घमंड चूर करने के लिये हथियार उठाना चाहिये। कभी कभी गुरू जी इन नौजवानों के साथ गदा फेरने लगते और गतका बाजी करते।

शिकार-खेलने के समय इन नौजवानों को गुरू जी के साथ साथ रहने का आदेश था। गुरू जी अपने दाहिने और वायें दोनों हाथों से तलवार चलाने, बन्दूक और तीर का निशाना साधने में इतने निपुण थे, कि उनका वार कभी खाली नहीं जाता था।

सारे दिन माखोवाल में चहल पहल बनी रहती। कहीं कुस्ती होती, गतके के अखाड़े लगते, कहीं चारण दरबार के योद्धाओं की वीरता के गाथा गीत गाते, कवि सम्मेलन होते। भिन्न भिन्न भाषाओं के कवियों को समान रूप से सम्मानित किया जाता।

प्रायः गुरू जी एकांत में रहकर, पौराणिक ग्रन्थों और प्राचीन पुस्तकों का अध्ययन करते रहते। इन्हें संस्कृत, ब्रज, फारसी और पंजाबी भाषा में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त थी। फारसी में लिखा गया फिरदौसी का शाहनामा गुरू जी को कण्ठस्थ हो गया था।

इस समय गुरू जी द्वारा रची गई प्रमुख रचनायें, चंडी चरित्र, कृष्णावतार, आदि पौराणिक कथाओं पर ही आधारित थीं। प्राचीन योद्धाओं का गुणगान, नौजवान शूरवीरों मे जोश, धीरज और उत्साह पैदा करता है। वीररस से भरी हुई इन रचनाओं का पाठ नौजवानों का नित्य नियम बन गया था। गुरू जी ने इन्हीं रचनाओं के माध्यम से भारत की सोई हुई जनता को जगाने के लिये सफल प्रयत्न किया।

गुरू-घर में भक्ति और शक्ति का समन्वय गुरू हरगोबिन्द के गुरू-काल में ही हो गया था। अपने अधिकारों और न्याय के लिये मर मिटने वाले सिखों की फौज, गुरू हरिराय, गुरू हरि किशन, और गुरू तेगबहादुर के समय में भी कायम रही। परन्तु गुरू गोबिन्द के गुरू-काल के दौरान सिख फौज बहुत ही वृद्धि हुई।

कुछ स्वार्थी और निर्बल मन के सिख भीतर ही भीतर गुरू जी के खिलाफ षडयंत्र रचने लगे। मसंदों का एक बहुत बड़ा भाग, गुरू जी के खिलाफ षंडयंत्रों में शामिल हो कर, गुरू-घर से विद्रोही होने की धमकियां देने लगा।

मसंद परम्परा गुरू रामदास जी ने प्रारंभ की थी। सिखों को आदेश दिया गया कि अपनी आमदनी का दसवां हिस्सा (दशवंध) गुरू जी के लिये दिया करें। हरेक इलाके में गुंरू जी ने अपने प्रतिनिधि (नायब) नियुक्त किये। जिनको मंसद कहा जाता था। मंसद सिखों द्वारा दिये गये चढ़ावे की रक़म इकट्ठी करके गुरू-घर में पहुंचाते थे।

किन्तु गुरू गोबिन्द राय के समय तक मसंद बड़े अभिमानी, आराम परस्त, दुष्ट और भ्रष्ट हो चुके थे। इसलिये गुरू-घर को दी गई भेंटों से अपना हिसाब पूरा करने के बाद ही, जो कुछ बचता, गुरू के खजाने में जमा कराते। सिख संगतों से अपनी मन पसंद वस्तुओं को जबरदस्ती उठा लाते थे। कई मसंदों ने तो अपनी पूजा करवानी शुरू कर दी थी।

गुरू-घर की अपनी कोई जागींर नहीं थी। गुरू-घर का सारा कार्य संगतों द्वारा की गई भेंटों से ही चलता था। इसलिये मसंदों ने गुरू जी को यह धमकियां देना शुरू किया कि जब तक वे अपने रंग-ढंग नहीं बदलते भेंटों में प्राप्त धन और सामग्री गुरू-घर नहीं पहुंचाई जायेगी।

गुरू अर्जुन देव के समय से ही मसंदों को यह आज्ञा थी, कि वे अपना दैनिक जीवन चलाने के लिये, गुरू-घर के लिये प्राप्त धन का दसवां हिस्सा अपने पास रख लें। लेकिन

जब मसंद गुरू-घर के लिये प्राप्त धन को ही हड़प करने लगे तो गुरू गोबिन्द जी ने संगतों को हुकमनामा भेजा कि वे मसंदों को गुरूघर की भेंट न दें।

दर्शनों के लिये आने वालों को अपने साथ ही कार-भेंट और चढ़ावे लाने का हुकुम हुआ। दर्शन के समय स्वर्णुद्राओं, नकद राशि, के अलावा, अच्छे से अच्छे शस्त्र, अच्छी नसल के घोड़े और हाथी लाने की भी आज्ञा दी गई।

गुरू जी और सिखों के बीच सीधा सम्पर्क हो जाने के कारण, मसंदों का धंधा ठप हो गया और वे माखोवाल छोड़कर जाने के लिये मजबूर हो गये। गुरू जी का विरोध करने वालों को बहुत ही धक्का लगा और सेवकों के हौसले बुलन्द हो गये।


DEVENDER Singh

गुरू गोबिन्द राय का विवाह सन् 1677 में बीबी जीतो जी के साथ हुआ। लड़की वालों ने माखोवाल के नजदीक ही एक नया नगर "गुरू का लाहौर" बसा दिया। विवाह संस्कार इतनी सज धज और शान के साथ हुआ कि पहाड़ी राजे ओर नवाब, सब दंग रह गये। दुल्हे के वेश में गुरू गोबिन्द राय के रूप में बहुत ही निखार आ गया था। बारात की अपनी ही शान थी।

सब से आगे मशालची, फिर अलगोजें बजाने वाले उसके पीछे नगाड़ची और उसके पीछे ढोल बजाने वाले और खुशी से नाचते हुए अलबेले और नटखट युवकों की मंडली।

सशस्त्र सिखों की एक टुकड़ी, उसके पीछे सफेद घोड़ी पर सवार गुरू गोबिन्द राय, उसके बाद, हाथी, घोड़े और पालकियों में सवारराजे, महाराजे, नवाब, अमीर, नगर निवासी संबंधी, सिख सेवक और फिर उसके पीछे सशस्त्र सिखों की एक और टुकड़ी।

वधू पक्ष ने बारात में शामिल होने वालों की सेवा सुभूषा में कोई कसर नहीं छोड़ी। अनेकों प्रकार के पकवान परोसे गये। बारातियों के मनोरंजन के लिये भांड और मशहूर गायक बुलाये गये।

विवाह के अवसर पर सिख सेवकों, मित्रों, राजों, नवावों और जागीरदारों की तरफ से भेंट किये गये तोहफों के अंबार लग गये। कुछ तोहफे तो बहुत ही अच्छे और कीमती थे। काबुल के दुनीचन्द ने तम्बू के आकार वाली शानदार चांदनी भेंट की। कहा जाता है कि वैसी अच्छी और शानदान चांदनी दिल्ली दरबार में भी नहीं थी। आसाम के राजा फतेहचन्द द्वारा भेंट में दिया गया प्रसादी हाथी विचित्र तरह के कौतुक करता था, जिसे देखकर सब खुश होते थे। कीमती से कीमती पोशाकों और दुशालों के साथ साथ सिखों द्वारा दी गई भेंटों में बढ़िया और अच्छी नसल के घोड़े, हाथी और नये नये हथियार भी प्राप्त हुए।

आनन्दपुर में कई दिन मेला जैसी रौनक बनी रही। संसार के सुख, और सम्मान के बीच गुरू जी अपने आदर्श और मनोरथ को नहीं भूले।

उन्नीस साल की उम्र में ही उन्होंने अपनी अति ही महत्वपूर्ण रचना "जपु" रच ली थी।

माखोवाल, कहिलूर (बिलासपुर) रियासत की धरती पर बसाया गया था। बिलासपुर का राजा भीमचन्द गुरू जी के विवाह के समय हुई शान शौकत और नज़राने में आये कीमती और अति सुन्दर तोहफों को देख कर ईर्ष्या से जल उठा। वह गुरू जी को अपनी प्रजा समझता था। राजा से बढ़कर प्रजा का शान। राजा क्यों पसन्द करने लगा ?

वह गुरू जी से लड़ाई करने के बहाने ढूढ़ने लगा। सबसे पहले उसने माखोवाल के लगान की बात कही। गुरू जी ने यह कह कर कि माखोवाल को उनके गुरू पिता ने ज़मीन खरीद के बसाया था, लगान देने और इस मामले पर कुछ भी विचार करने से इनकार कर दिया।

फिर भीमचन्द ने अपने लड़के के विवाह के अवसर पर, भेंट में प्राप्त शानदान.चांदनी मांगी। गुरूजी ने यह कहकर कि वह चांदनी संगत की अमानत है, वह किसी और को नहीं दी जा सकती, चांदनी देने से इनकार कर दिया।

कुछ समय के पश्चात् राजा ने अपना विशेष दूत भेजकर भेंट में आये हुए प्रसादी हाथी को मांगा। गुरूजी राजा को नीयत समझ गये और उनके दूत को कोरा जवाब देकर वापस भेजा।

राजा ने आदेश न मानने पर सजा देने के लिये गुरूजी पर आक्रमण कर दिया। बहादुर सिखों ने इस आक्रमण को विफल कर दिया और हमलावरों का सब सामान लूट लिया। जान और माल का काफी नुक्सान हुआ। आक्रमणकारी भाग गये।

सिखों से राजा की फौज हार गई, इस बात की खबर सारे इलाके में जंगल की आग की तरह फैल गई। इस अपमान से आहत होकर राजा भीमचन्द हर समय गुरू जी के विरुद्ध विष घोलने लगा। उसके सैनिकों और सिखों के बीच रोज झड़पें होने लगीं।

गुरू जी की प्रतिदिन बढ़ती हुई सैनिक शक्ति से डरकर भीमचन्द ने दुबारा हमला करने की हिम्मत तो नहीं की। किन्तु उसने माखोवाल की हद बाहर से सिखों का निकलना मुश्किल कर दिया।


devender singh

माता गूजरी ने पौत्र का मुंह देखने की लालसा से सन् 1685 ई. में बजवाड़े के सोनी खत्री की पुत्री सुन्दरी से गुरू गोबिन्द राय का दूसरा विवाह रचाया। बजवाड़ा माखोवाल से 15 किलोमीटर दूर था, फिर भी बारात को वहां ले जाना मुनासिव नहीं समझा गया, इसलिये विवाह संस्कार की सारी प्रथायें माखोवाल में ही सम्पन्न की गईं।

राजा भीमचन्द और गुरूजी के बीच में प्रतिदिन बढ़ते हुए तनाव को देखकर सिरमौर रियासत के राजा मेदनी प्रकाश ने गुरूजी से विनती की कि वे सिरमौर रियासत में आकर अपनी मन पसन्द जगह पर बस जायें। सिरमौर जो बाद में नाहन रियासत के नाम से विख्यात हुआ, ग्यारह हजार फुट की ऊंचाई पर हरी भरी रमणीक पहाड़ियों के बीच में स्थित था इन्हीं पहाड़ियों के बीच से निकल कर, जमुना नदी, इन पहाड़ियों को दून की पहाड़ियों से अलग करती थी। इन्ही पहाड़ियों के बीच से ही निकली जमुना की सहायक नदी गिरी इसको दो अन्य हिस्सों में बांटती थी। जमुना पार का इलाका गढ़वाल रियासत में था। और इस पार रियासत सिरमौर।

गुरू जी के सामने अपनी रियासत में वसने के प्रस्ताव से मेदनी प्रकाश ने गुरू जी के प्रति अपनी मैत्री और सहानुभूति प्रकट की थी। लेकिन उसका उद्देश्य कुछ और था। वह गुरू जी की सैनिक शक्ति को अपने दुश्मन और प्रतिद्वन्दी गढ़वाल रियासत के राजा फतेहशाह के विरुद्ध भिड़ाना चाहता था।

पाउंटा, सिरमौर रियासत की ठीक हद पर स्थित है। घने जंगलों से भरे हुए इस इलाके में खतरनाक जंगली जानवार बहुत थे। जमुना के किनारे एक रमणीक स्थान देखकर गुरूजी ने 6 अगस्त 1685 को पाउंटे की नींव डाली। जंगली जानवरों और दुश्मनों से बचने के लिये सबसे पहले यहां पर किले का निर्माण किया गया। इलाके की भौगोलिक स्थित से परिचित लोगों को अपनी फौज में भरती किया। सढ़ौरे के पीर बुधूशाह ने कुछ पठान योद्धाओं को गुरूजी की फौज में भरती करवा दिया। पीर जी को इन योद्धाओं की बहादुरी और वफादारी पर बड़ा विश्वास और गर्व था।

पाउंटे का शान्त और रमणीक वातावरण कवि-हृदय गुरू जी को बहुत ही अच्छा लगा। सर्वव्यापक, सर्व समर्थ और समग्र सृष्टि के सृजन कर्ता अकाल पुरुष की महिमा का गुण गान करते हुए गुरू जी ने "अकाल स्तुति" की रचना यहीं की। 52 दरबारी कवियों ने भी प्रकृति के अद्‌भुत दृश्यों से प्रभावित होकर, कई अभूतपूर्व रचनायें यहीं की। जमुना के किनारे एक ऊंचे टीले पर बैठकर गुरूजी रोज दरबार लगाते। विशेषज्ञों, कवियों और विद्वानों के वचनों को सुनते और अपने वचन सुनाते। अच्छी रचनाओं की प्रशंसा करते और इनाम भी देते।

9 दिसम्बर 1686 को माता सुन्दरी ने साहिबजादा अजीत सिंह को जन्म दिया। पाउंटे भर में खुशी मनाई गई। राजा मेदनी प्रकाश अपने परिवार के साथ गुरूजी की खुशी में शामिल होने के लिये आये।

ऐसा लगता था, कि गुरू जी माखोवाल छोड़कर पाउंटा में आ बसे थे। पर ऐसी बात नहीं थी। माखोवाल में पहले की तरह सभी कार्यक्रम जारी थे। गुरू जी कुछ चुने हुए सिखों को माखोवाल की रक्षा के लिये छोड़ आये थे। पाउंटे में गुरू जी के बढ़ते प्रभाव को देख और सुनकर राजा भीमचन्द की नींद हराम हो गई थी।

उसने मेदनी प्रकाश के खानदानी दुश्मन गढ़वाल के राजा फतेहशाह को समझा बुझाकर, पाउंटे में गुरू जी पर आक्रमण करवा दिया। राजा भीमचन्द भी अपनी सेना के साथ इस लड़ाई में शामिल हो गया। दोनों रियासतों की फौजों के मुकाबले गुरू जी की फौज कम थी, किन्तु सिखों ने बहादुरी के साथ मुकाबला किया। पाउंटे से 9 किलो मीटर दूर भंगानी के स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। वेतन पाने वाले पठान योद्धा गुरू जी को धोखा देकर दुश्मनों के साथ जा मिले। परन्तु ठीक समय पर पीर बुधू शाह अपने पुत्रों और मुरीदों के सहित गुरूजी की मदद के लिये आ पहुंचे। पीर जी को युद्ध के मैदान में देखकर पठान निराश और शर्मिन्दा होकर युद्ध के मैदान से भाग गये। उनको भागते हुए देखकर अन्य सिपाही भी भागने लगे। गुरू जी ने अपने दुश्मनों के दो बड़े सेनापति, भीखन खां और हरीचन्द को अपने तीरों से घायल कर दिया।

गुरू जी की फौज जीत गई। सिख योद्धाओं के हौसले बुलन्द हो गये। सिखों की बहादुरी की चर्चा घर-घर होने लगी। हरेक व्यक्ति और जोशीले जवान गुरू जी की फौज में भरती होने के लिये उतावले हो उठे। पाउंटे में बाहर से भी लोग आने लगे। इन आने वाले नौजवानों में गुरू जी के वचन नई जान डाल देते। गुरू जी के वचन सुन सुन कर वे अपनी आन और शान को कायम रखने के लिये अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये तैयार हो जाते। गुरू जी इन जोशीले नौजवानों को संगठित करते। भिन्न भिन्न योद्धाओं के नेतृत्व में इनको युद्ध कला सिखाई जाती।

गुरू जी लगभग तीन साल पाउंटे मे रहे। सिख फौजों से दूसरी बार हारने के बाद राजा भीमचन्द गुरू जी से सुलह करने का प्रयत्न करने लगा। कुछ साझे दोस्तों के माध्यम से उसने गुरू जी को माखोवाल वापस आने के लिये मना लिया। आस पास के अन्य पहाड़ी राजे भी गुरू घर अपनी गलतियों के लिये क्षमा मांगने के लिये आने लगे।

गुरू जी ने इन सारे राजाओं को एक जूट होकर बाहरी शक्ति का मुकाबला करने के लिये प्रेरित किया। गुरू जी स्पष्ट कहते थे और कि हम ना किसी को अधीन करना चाहते हैं और न ही पराधीन होना चाहते है।

गुरूजी ने पहाड़ी राजाओं में एकता करवा कर दिल्ली के दरबार के विरुद्ध बगावत करवा दी और उन्होंने दिल्ली दरबार को वार्षिक कर देने से इनकार कर दिया। 20 मार्च 1690 को माता जीतो जी की कोख से साहिबजादा जुझार सिंह ने जन्म लिया। खुशियों के समारोह अभी मनाये ही जा रहे थे, कि आलिफ खां के नेतृत्व में मुगल सेना पहाड़ी राजाओं से कर वसूलने के लिये चढ़ आई।

पहाड़ी राजाओं की सेनाओं के साथ, सिख सेना भी मुगल आक्रमणकारियों के खिलाफ लड़ने के लिये युद्ध के मैदान में जा डटी। कांगड़ा शहर से 30 किलोमीटर दूर दक्षिण पूर्व व्यास नदी के किनारे बसे शहर नदौन में बड़ा घमासान युद्ध हुआ। दोनों तरफ के योद्धा एक दूसरे से भिड़ गये। गुरू जी के तीर दूश्मनों की देह छलनी करने लगे। बजरवाल का दयाल बड़ा शूरवीर था, वह जिधर जाता, उधर हा हा कर मच जाता। जब वह सिख सेनाओं की ओर बढ़ा तो गुरू जी ने बन्दूक के पहले ही निशाने से उसे मार गिराया। दयाल के मरने की खबर सुन कर मुगल सेना का दिल टूट गया। आलिफ खां जान बचा कर युद्ध के मैदान से भाग गया।

मुगलों के विरुद्ध लड़ाई में पहाड़ी राजाओं की यह पहली विजय थी। बड़ी खुशियों मनाई गई। पहाड़ी राजाओं ने इस खुशी के उपलक्ष्य में अपनी प्रजा को आदेश दिया कि प्रत्येक घर में दीपमाला सजाई जाये। ढोल बजे। भांगड़ा नाच किया गया। मिठाइयां बांटी गई। शूरवीर योद्धाओं को सम्मानित करके पुरस्कार दिये गये।

किन्तु इस विजय की प्रसन्नता बहुत दिनों तक कायम न रह सकी। राजा भीमचन्द ने चुपके चुपके कांगड़ा के फौजदार की अधीनता स्वीकार कर ली और सालाना कर देने का वादा करके उसके साथ सुलह कर ली।

दिल्ली दरबार में इस बात की आम चर्चा थी, कि पहाड़ी राजाओं ने दिल्ली दरबार के खिलाफ बगावत गुरू गोबिन्द के उकसाने से की। मुगल फौजों की पराजय के लिये भी सिखों को जिम्मेदार ठहराया गया। इसलिये गुरू जी को इस जुर्म की सजा देने के लिये योजना तैयार की जाने लगी।

कांगडे के फौजदार ने इसी योजना के अनुसार भीमचन्द के साथ समझौता किया था।

गुरू-घर के जासूसों ने सूचना दी कि दिल्ली दरबार ने कांगडे के फौजदार को गुरू जी को काबू में लाने का आदेश दिया है।

भविष्य में होने वाली घटनाओं को ध्यान में रखते हुए गुरू जी ने माखोवाल नगर की रक्षा के लिये उसके चारों तरफ किलों का निर्माण कराया। आनन्दगढ़, केसगढ़, लौहगढ़ और फतेहगढ़ इन किलों के नाम रखे गये। सिखों को हर समय तैयार रहने का आदेश दे दिया गया। किलों के बन जाने के बाद सिखों के युद्धाभ्यास आम जनता की नजरों से ओझल हो गये।

कांगडे के फौजदार दिलावर खां के पुत्र, खानजादे ने 1694 ई. में एक भयंकर काली रात के समय भारी फौज के साथ गुरू नगरी पर हमला बोल दिया। इस हमले की तैयारी बिल्कुल गुप्त रखी गई। रात के अंधेरे में चोरों की चाल चलने वाले वैरी का ख्याल था, कि वह सोये हुए गुरू जी और सिखों को अचानक घेर कर मार डालेंगे या बन्दी बना लेंगे।

पर जब सिखों ने नगाड़े की चोट पर तीरों और गोलियों की बौछार शुरू कर दी तो दुश्मनों को आगे पैर रखना ही मुश्किल हो गया। उनको इस बात का ख्याल भी नहीं था, कि सिख अचानक उन पर ही टूट पडेंगे। जासूसों ने उन्हें खबर दी थी, कि रात में सारा आनन्दपुर सोता रहता है। चिड़िया तक नहीं फडकती।

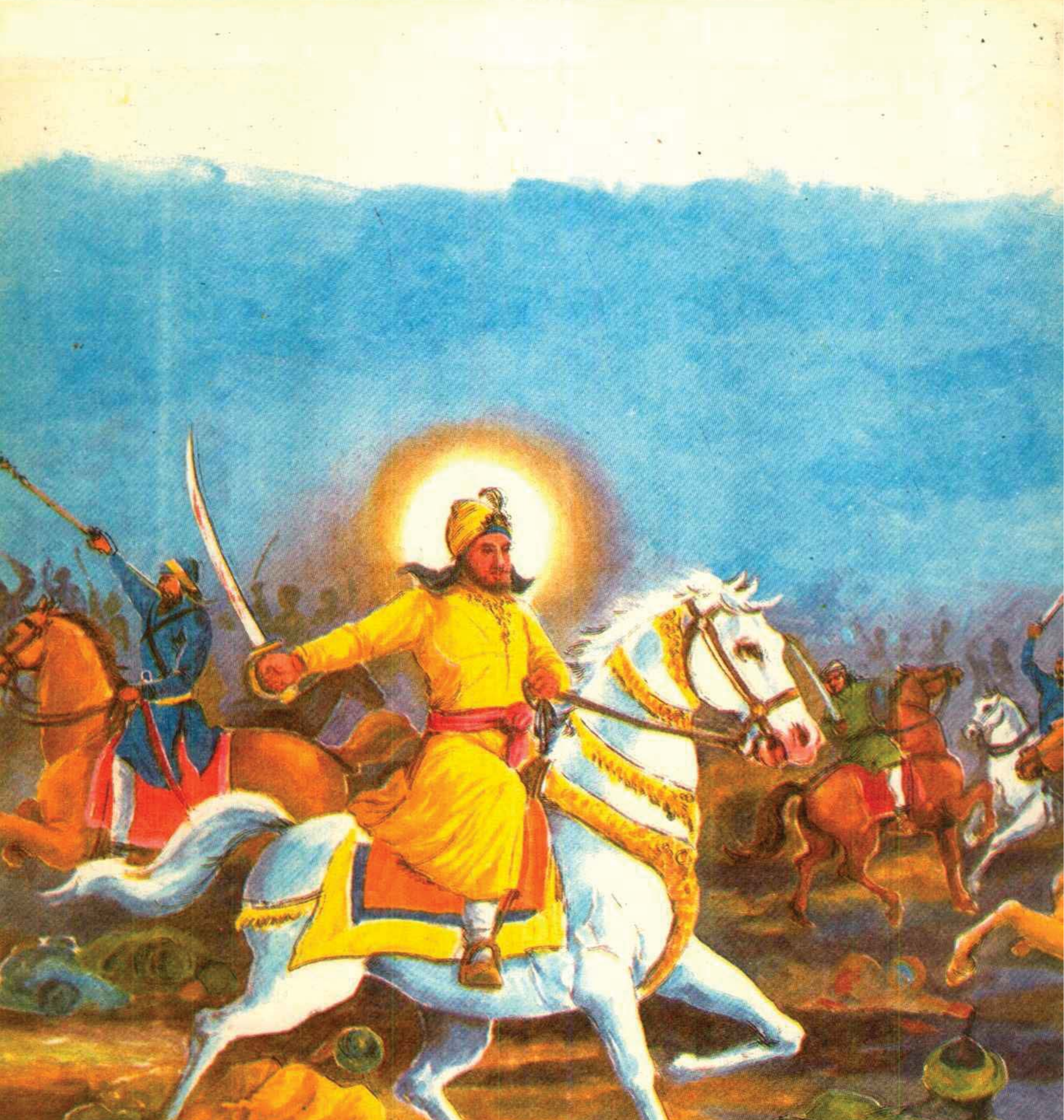
दुश्मनों के काफी लोग मारे गये, काफी गोला बारूद और रसद छोड़कर वह रात के अंधेरे में ही जान बचाकर भाग गये।

दूसरे दिन जीत की खुशी में सारा दिन नगाड़ा बजता रहा गुरू जी ने अपने वीर योद्धाओं को सम्मानित किया।

गुरू-घर के प्रतिदिन बढ़ते प्रभाव के कारण आनन्दपुर में चहल पहल भी बढ़ने लगी।

माता जीतो जी ने 14 जनवरी 1697 के दिन साहिबजादा जोरावर सिंह को जन्म दियां। इस तीसरे पुत्र की खुशी में विशेष दरबार सजाया गया। कवि सम्मेलन किये गये। गरीब और अपाहिजों को कपड़े और मिठाइयां बाँटी गई।

22 फरवरी 1699 में माता जीतो जी ने चौथे साहिबजादा फतहसिंह को जन्म दिया। इसी साल एक विचित्र घटना घटी।



रोहतास की संगत के साथ आये एक सिख की नौजवान बेटी ने भरे दरबार में अपनी यह प्रतिज्ञा कह सुनाई कि उसने अपने हृदय में गुरू गोबिन्द जी को पति के रूप में अपनाया है और उसने सारी जिन्दगी गुरू चरणों की सेवा में ही बितानी है।

गुरू जी ने उसे बहुत समझाया कि वह पहले से ही विवाहित हैं। उनके चार साहिब जादे (पुत्र) हैं। अब और विवाह नहीं करना चाहते। माता जी को पौत्र का मुंह देखने की बहुत जल्दी थी। इसलिये.........पर अब तो अकाल पुरुष ने किसी चीज़ की कमी नहीं छोड़ी।

पर उस युवती ने यह सब सुनने के बाद बड़े भक्ति भाव के साथ कहा "महाराज आप चाहें मुझे स्वीकार करें या न करें। मुझे तो आप के ही चरणों में रहना है।"

उसकी दृढ़ता के सामने गुरू जी की कोई दलील नहीं चली। संगत ने गुरू जी के प्रति उसकी लगन और दृढ़ता को देखकर गुरू जी से विनय की वे उसकी प्रतिज्ञा को पूरी करें। गुरू-घर में एक अविवाहित नवयुवती का रहना उचित नहीं था, इसलिये गुरू जी ने उसके साथ शादी कर ली।

पर यह संबंध संसारिक नहीं था। यह एक आध्यात्मिक संबंध था।



सन् 1699 में वैशाखी के दिन आनन्दपुर में बहुत ही चहल पहल थी। गुरू जी के विंशेष हुकुमनामे के अनुसार सारे हिन्दुस्तान, काबुल कंधार तक की संगतें इस विशेष सम्मेलन में शामिल होने के लिये आई थीं। भरे दरबार में गुरू गोबिन्द जी एक अजीब कौतुक रचा। हाथ में नंगी कृपाण पकड़कर गुरू जी ने अपने तखत पर खड़े होकर ऊंची आवाज में कहा "आज एक सिख के सिर की जरूरत है।[5] है कोई ऐसा सिख जो गुरू को अपना शीश भेंट कर सके।"

सभा में चुप्पी छा गई। हैरान और परेशान होकर सारे लोग इधर उधर देखने लगे। आज तक गुरूओं ने अपने शीश दिये हैं। कभी शीश मांगे नहीं हैं। आज गुरू जी को क्या हो गया है ? कई लोगों के मुंह से यह बात सहज ही निकल गई।

"है कोई गुरू को अपना शीश भेंट करने वाला"। जब गुरू जी ने दुसरी वार आवाज लगाई, तो गुरू दर्शनों के लिये लाहौर से आया, दयाराम हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

गुरू जी उसे दरबार के पीछे की तरफ एक विशेष तम्बू मे ले गये। उसके बाद खून से भीगी कृपाण ले, दरबार के बीच आकर एक शीश और मांगने लगे। इस बार दिल्ली से आये भाई धर्म चन्द ने अपना शीश अर्पित किया।

गुरू जी उसे भी उसी तम्बू में ले गये। वे फिर खून से भीगी हुई कृपाण ले एक शीश और मांगने लगे।

सभा (दरबार) में भगदड़ मच गई। कुछ सिख गुरू जी के महलों में भागे हुए गये और माता गूजरी से गुरू जी को समझाने की विनती की। माता गूजरी से उन्होंने कहा "कि गुरू जी अब अपने सिखों के ही सिर मांगने लग गये हैं। एक, दो, तीन और न जाने कितने सिखों के शीश गुरू जी लेंगे। कल गुरू के दरबार में कौन आयेगा ?"

माता जी ने उन्हें समझा बुझा के वापस दरबार में भेज दिया। दरबार में आकर जो दृश्य उन्होंने देखा, इससे उनकी बुद्धि चकरा गई। गुरू जी को शीश देने वाले पांच सिख जीते जागते शोभायमान केसरी वेष भूषा में सजे गुरू जी के तखत के पास खड़े थे। गुरू जी लोहे के एक बड़े बाटे में खंड़े (दोधारी तलवार) से कुछ धोलते हुए वाणी का पाठ कर रहे थे। उन्हीं के पास खड़े हुए माता जी अपने पल्लु में भरे बताशों को झुक कर बाटे में डाल रहे थे।

कुछ देर बाद गुरू जी ने अरदास की। बाटे के बीच तैयार किया हुआ अमृत उन पांचों को पिलाया गया। उनके शरीर में एक सिहरन सी हुई। उनका जनम, कर्म और जात पात का भेद मिटा, खालसा का रूप कर दिया। उनको हथियारों से सजाया गया।

उन्हें पांच ककारों को धारण करने वाला बनाया गया। ये पांच ककार हैं, केश, कंघा, कड़ा, कृपाण, और कच्छा।

इन पांचों को गुरू जी ने सिंह (शेर) कहा और उन्हें पाचं प्यारे कहकर उनकी महत्ता प्रदर्शित की। फिर इन पांच प्यारों को गुरू के रूप में मानकर गुरू जी ने इनसे अमृतदान की मांग की। इस तरह गुरू जी ने आप ही गुरू और आप ही चेला की अनूठी परम्परा कायम की।

खालसा-गुरू जी का सबसे प्यारा और सबसे निराला पुत्र, माता साहिब देवकी गोदमें देकर उन्हें खालसा की माता होने का सम्मान दिया।

गुरू का खालसा-गुरू का रूप हो गया। नीच और छोटे समझे जाने वाले लोगों को खंडे से घोला हुआ अमृत छका कर, उन्हें अपना गुरू मान कर उनको सम्मानित किया। ऊंच नीच और जात पात में विभाजित समाज की जड़ें हिलाकर रख दीं। यह एक विचित्र सामाजिक क्रान्ति थी।

पांच प्यारों[6] को जो मान, महत्व और अधिकार गुरू जी ने दिये, वह सनातन से चले आ रहे धर्मसत्ता और राज सत्ता के खिलाफ विद्रोह था। ऊंची जातियों के राजे महाराजे, अमीर, वज़ीर और पुजारी वर्ग के लोग भड़क उठे। "गुरू सब का धर्मा भ्रष्ट कर रहा है। धर्म का नाश हो गया है। प्रलय हो जायेगी। सब कुछ नष्ट हो जायेगा। "गुरू को रोकना चाहिये, नहीं तो वह सब को ले डूबेगा।" गुरू जी के खिलाफ तरह-तरह की आवाजें उठने लगीं।

ऊंची जाति वाले, जो शूद्र को छूने मात्र से ही अपने को अपवित्र समझते थे, उसके साथ समानता के आधार पर बैठना कभी नहीं पसन्द कर सकते थे। उनकी समझ में तो शूद्र केवल ऊंची जातियों की सेवा के लिये ही पैदा हुए हैं। शूद्र इनके पुश्तैनी गुलाम हैं। वे मार खाते, बेगार करते, पेट से भूखे, तन से नंगे रहते, पर चुप रहते। ब्राह्मणों के कथनानुसार वे इस जन्म के दुःखों को पूर्व जन्म के कर्मों का फल समझ कर भुगतते रहते। पर गुरू गोबिन्द सिंह ने इनको अपने साथ तख्त पर बिठाकर अपने हाथों से इन्हें अमृत छकाकर, इनका दिमाग आसमान में चढ़ा दिया। 'अब ये हमारे काम क्यों करेंगे।' अब ये हमारा ही मुकाबला करेंगे। यही सोच कर ऊंचे कुल वाले खीझते रहते।

कुछ चतुर ब्राह्मणों ने आपस में सलाह मशविरा करके यह निर्णय लिया कि गुरू जी को इस इलाके से खदेड़ दिया जाये। उन्होंने इलाके के सारे राजाओं को एकत्रित करके शास्त्रों के उदाहरण दे दे कर कहा कि धर्म की रक्षा के लिये गुरू गोबिन्द सिंह

को इस पवित्र धरती से उखाड़ कर फेंकना हर क्षत्रिय राजपूत का धार्मिक कर्तव्य है।

ज्यों ज्यों गुरू जी का विरोध बढ़ता गया, त्यों त्यों अमृत वान कर के सिख बनने वालों की भीड़ बढ़ने लगी। वैशाखी के कुछ समय बाद ही लगभग अस्सी हजार सिख अमृत छक कर खालसा बन गये।

प्रतिदिन बढ़ती हुई गुरू जी की सैनिक शक्ति को देख कर भीमचन्द बहुत घबरा रहा था। पंडितों ने जब सभी से धर्म की रक्षा के लिये गुरू जी के विरुद्ध कारवाई करने के लिये प्रेरित किया, तो उसने आगे रहकर, आनन्दपुर पर आक्रमण कर दिया।

इस बार सिखों ने पहाड़ी फौज को बुरी तरह रौंदा। अमृत की अद्भुत शक्ति ने सिखों के मन से मौत का भय निकाल दिया था। वे अजेय और श्रेष्ठ शूरवीर होकर निखरे। उनके आगे कौन टिके ?

इस लड़ाई में सिखों ने दुश्मनों के हाथी, घोड़े और बहुत सारे हथियार छीन लिये।

वैशाखी के अवसर पर सिखों के जमाव और गुरू गोविन्द सिंह द्वारा खालसा पंथ का संगठन और सिखों को हथियार बन्द करने की खबर सुनकर बादशाह औरंगजेब बहुत ही क्रोधित हुआ। उस समय दरबार की आज्ञा बिना हथियार उठाना बगावत थी। बगावत करने वाले अपने सगे भाइयों के सिर औरंगजेब ने कटवा दिये थे। अपने बूढ़े पिता बादशाह शाहजहां को कैद कर रखा था।

शाही फरमान जारी हो गया कि गुरू गोबिन्द सिंह को जीवित या मृत पकड़ कर दरबार के बीच लाया जाये।

1701 में गुरू जी आनन्दपुर को छोड़कर सतलुज पार निरमोह चले गये। सिखों को आदेश दिया गया कि वे हथियारबन्द होकर आनन्दपुर पहुंचे। 1702 ई. के आरंभ में मुगलों और पहाड़ी राजाओं की साझी सेना से सतलुज के किनारे बसे निरमोह के स्थान पर युद्ध हुआ। सिखों की विजय हुई। अप्रैल में भीमचन्द के साथ बसौली स्थान पर फिर युद्ध हुआ। सिखों ने कलमोट के किले पर कब्जा कर लिया। इसी साल अगस्त में गुरू जी आनन्दपुर पुनः पहुंच गये।

सरहिंद के सूबे वज़ीर खां के नेतृत्व में मुगल सेना ने सिखों को कुचलने के लिये आनन्दपुर पर धावा बोल दिया। शाही हुकुम के अनुसार आस पास के पहाड़ी राजे और फौजदार अपनी सेनाओं के साथ इस अभियान में शामिल हो गये।

पचास साठ हजार की संख्या में चढ़ आई सेना का सिखों ने बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया। आनन्दपुर की रक्षा के लिये गुरू जी ने बड़ी ही चतुराई से इस तरह किले बन्दी की थी कि दुश्मनों को आनन्दपुर की सीमा के भीतर घुसना ही मुश्किल हो गया।

बार बार हमले करके पराजित होने के बाद वज़ीर खां आनन्दपुर को घेरा डाल कर बैठ गया। मुगल सेना ने आने जाने के सभी रास्ते रोक दिये। किले के बीच जमा किया गया रसद पानी खत्म होने लगा। सिख पेड़ों के पत्ते और जानवरों का मांस खा खा कर किसी तरह गुजारा करने लगे। गोला बारूद भी खतम होता जा रहा था।

घेरा काफी लम्बा हो गया। काफी सिख भूख से मर कर शहीद हो गये। पर सिखों की मार के भय के कारण दुशमन आनन्दपुर के नजदीक भी नहीं जा सकते थे। भूख से परेशानी के कारण कुछ सिखों का हौसला पस्त हो गया और वे बेदावा लिख "तू हमारा गुरू नहीं और हम तेरे सिख नहीं" गुरूजी का साथ छोड़कर घर वापस चले गये।

जब कई दिन तक सिखों ने किले से कोई कार्यवाई नहीं की तो वज़ीर खां ने आनन्दपुर किले का दरवाजा तोड़ने के लिये एक हाथी को शराब पिला कर कुछ चुने हुए सेनाधिकारियों और सिपाहियों के साथ भेजा। अली अली कहते हुए दुश्मन ज्यों ही किले के दरवाजे पास पहूंचे, तो गुरू-घर के चोबदार बचित्तर सिंह ने हाथी के माथे में नागणी बरछा मार कर उसे घायल कर दिया। ज़खम की पीड़ा से कराहता हाथी अपनी ही फौज को पैरों से रौंदता हुआ पीछे की ओर भाग गया। वजीर खां का यह भ्रम कि गुरू जी और सिख हौसला पस्त हो गये हैं, दूर हो गया।

किले के बीच रसद-पानी और गोली बारुद की कमी को दूर करने के लिये सिखों ने एक नया तरीका अपनाया। आधी रात के समय, मैदान में पड़े हुए दुश्मनों पर हमला कर लूट मार करके किले में फिर वापस आ जाते। कभी कभी तो दुश्मनों के जान-माल का काफी नुक्सान कर जाते।

बड़ी संख्या वाली इस फौज में, आनन्द पुर के घेरे के बावजूद आनन्दगढ़ के किले पर कब्जा न होने के कारण, निराशा फैलने लगी। दिल्ली से आदेश पर आदेश आ रहा था, कि जैसे भी हो गुरू जी और उनके सिखों को किले से निकालो और मारो। पहाड़ी राजाओं और वज़ीर खां ने एक चाल चली। उन्होंने अपने दूत के माध्यम से गुरू जी को कहला भेजा "अगर आप अपने साथियों के साथ किला छोड़ जाओ, आपके जान-माल की रक्षा करना हमारी जिम्मेदारी है"।

गुरू जी ने यह पेशकश ठुकरा दी और उनके दूत से कहा "उन पर मेरा विश्वास नहीं है"।

दूसरी बार दूत जब गुरू जी के दरबार में हाजिर हुआ तो उसके हिन्दू राजाओं की तरफ से गाय और मुसलमानों की तरफ से कुरान की कसम खा कर वादा निभाने का भरोसा दिया।

गुरू जी उनकी नीयत को जानते थे, परन्तु सिखों के जोर देने पर उन्होंने 1704 ई. में किला खाली करने की बात मान ली।

पर जब गुरू जी किला खाली करके रात के अंधेरे में कुछ दूर ही गये होंगे, तब दुश्मनों ने अपनी कसमों और वायदों को तोड़कर, सिखों पर हमला कर दिया। सरसा नदी के किनारे सिखों ने बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया। गुरू-परिवार और बहुत से सिखों को नदी पार बचकर निकल जाने का अवसर दिया। गुरू-घर का सारा सामान और बहुमूल्य ग्रन्थ दरिया में ही बह गये।

नदी के दूसरे किनारे पहुंचने तक गुरू-परिवार बिखर गया। माता गूजरी और दो छोटे साहिबजादे रास्ता भूल गये। गुरू-घर के पुराने रसोइये गंगु ब्राह्मण ने विश्वास घात और नमक हरामी करके उनको मुरिडें के फौजदार को सौंप दिया। उसने बड़ा इनाम लेने के लिये दोनों मासूम बच्चों और वृद्ध माता गूजरी को सूबा सरहिंद के सूबेदार के सामने पेश किया।

सरसा नदी के किनारे हुई लड़ाई में काफी सिख मारे गये। कुछ नदी की तेजधारा के कारण नदी में ही बह गये। अंधेरे के कारण दुश्मनों को गुरू जी के बच निकलने का पता न लगा। वे विजय का डंका बजाते हुए वापस चले गये।


Devender singh

दिन चढ़ने तक गुरू जी दो बड़े साहिबजादे और चालीस पचास सिखों के सहित रोपड़ होते हुए चमकौर पहुंच गये। चौधरी बुद्धी चंद ने अपनी गढ़ीनुमा हवेली में गुरू जी को ठहराया। किन्तु दोपहर तक सिखों का खुरा खोजती हुई मुगल सेनाओं ने गढ़ी को घेर लिया। गुरू जी के तीरों की मार से डरकर कोई भी योद्धा गढ़ी के नजदीक नहीं आया। यहां भी उन्होंने घेरा डालकर सिखों को भूखे, प्यासे मारने का ढंग अपनाया।

गढ़ी में रखे हुए रसद से दो दिन काम चला। अन्त में गुरू जी ने जूझ कर लड़ मरने का फैसला कर लिया। उन्होंने पांच पांच सिखों के जत्थे बना कर दुश्मनों से टक्कर लेने के लिये भेजे। गढ़ी से पांच सिखों के निकलते ही, गढ़ी के बाहर तैनात हजारों दुश्मन सिपाही उन्हें घेर लेते। जब पांच बहादुर सिख बहादुरी से लड़ते हुए वीर गति को पा जाते, तो उनके स्थान पर और पांच सिखों का जत्था बाहर लड़ने के लिये आ जाता। साहिबजादा अजीत सिंह और जुझार सिंह भी दुश्मनों से लड़ते हुए शहीद हो गये।

गढ़ी के अन्दर जब केवल पांच सिख रह गये, तो सिखों ने गुरू जी से विनती की, कि जैसे भी वने, वे रात के अंधेरे में बचकर निकल जायें।

गुरू जी नहीं माने। उन्होंने मैदान से बचकर निकल भागना अच्छा नहीं समझा। किन्तु सिखों ने उनसे विनती करते हुए कहा, "महाराज पंथ की बेहतरी और उन्नति के लिये आपका जीवित रहना बहुत ज़रूरी है। नहीं तो सिख हिम्मत हार जायेंगे"।

किन्तु इस पर भी जब गुरू जी मैदान छोड़कर जाने को तैयार नहीं हुए, तो पांच सिखों ने पांच प्यारों के रूप में गुरूमता (सांझा फैसला) करके निर्णय दिया "गुरू खालसे का हुकुम है कि गुरू गोबिन्द सिंह बचकर गढ़ी से निकल जायें"।

गुरूमते के आगे शीश झुका कर गुरू जी भेष बदल कर दो सिखों के साथ रात के अंधेरे में गढ़ी से निकलने के लिये मजबूर हो गये। फैसला यह हुआ कि दुश्मन को धोखा देने के लिये गुरू जी का पहनावा, जिग्हा कलगी संगत सिंह को पहनाई जाये और वे गढ़ी में बाकी बचे सिखों के साथ, आखिरी दम तक लड़ते लड़ते शहीद हो जायें। गुरू जी और उनके साथ जाने वाले दो सिख गढ़ी से निकल कर सैनिक प्रयाण के अनुसार भिन्न भिन्न दिशाओं में जयकार करते हुए दुश्मनों की फौज को धोखे में डालकर बचकर निकल जायें।

सारी रात अनजान राहों से नंगे पैरों चलते हुए गुरू जी के पैर नुकीले पत्थरों और कंटीली झाड़ियों से लहू लुहान हो गये। तड़के सवेरे पौ फूटने तक वह माछीवाड़े के जंगलों में पहुंच गये। दोनों सिख यहीं गुरू जी से आ मिले।


Devender Singh

यहां पर उनके भक्त गनी खां और नबी खां ने उन्हें अपने घर में ठहराया। बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उन की सेवा की। गुरू जी के साथ हुई घटनाओं को सुन सुनकर दोनों खान बन्धुओं के परिवार के आसूं नही थमते थे।

मुगल सेना गुरू जी का पीछा कर रही थी। यहां पर भी मुगल सेना के आने का डर था। इसलिये दोनों खान बन्धुओं ने गुरू जी को 'उच के पीर बताकर किसी ऐसी जगह पहुंचाना चाहा थे, जहां पर कोई खतरा न हो। दोनों भाई, दोनों सिखों की मदद से गुरू जी को पलंग पर बैठाकर वहां से ले चले। उस समय उच के पीर का मुसलमानों में बड़ा आदर था। रास्ते में मिलने वाला हर व्यक्ति उनके प्रति अपना अत्याधिक सम्मान प्रकट करता था।

एक जगह मुगल सैनिकों ने उन्हें रोक लिया। पर उनको जब पता चला कि वे उच के पीर हैं, तब उन्होंने झुक कर उनके प्रति आदर प्रदर्शित किया और आगे जाने दिया। आलमगीर के स्थान पर, निगाहिआ सिंह ने गुरू जी को भेंट के एक घोड़ा दिया। गुरू जी ने उच के पीर का भेष उतार कर खां बन्धुओं को धन्यवाद दिया और वह पलंग जिस पर गुरू जी, उच के पीर का भेष बदल बैठकर आये थे, निगाहिया सिंह को भेंट की। इसी स्थान पर आजकल गुरूद्वारा मंजी साहब बनाया गया। जो लुधियाना शहर से नजदीक मलेर कोटला रोड पर स्थित है।

यहां से चलकर गुरू जी, सालो गांव पहुंचे। यहां पर वे अपने बचपन के शिक्षक काज़ी पीर मुहम्मद जी के पास ठहरे। अपने शिष्य के साथ हुये अन्याय और अत्यचार को सुनकर उनकी आंखों से अश्रुधारा वह निकली। वे बार बार गुरू की जी पीठ पर हाथ फेर कर उनकी धीरज बंधाकर स्वय रोने लगते।


Devender Singh

सालो से चलकर गुरू जी दीनो पहुंचे। यहां पर ही उन्हें सूचना मिली कि सूबा सरहिंद ने गुरू जी के दोनों छोटे साहिबजादों को दीवाल में जिन्दा चुनवा कर शहीद कर दिया और माता जी भूख और बच्चों के वध को न सहन कर स्वर्गवास हो गई। माता जी और बच्चों के संस्कार के लिये गुरू जी के सिख टोडर मल ने मोहरें बिछा कर जगह ली। और उस जगह पर उनका अन्तिम संस्कार किया। गुरू जी ने यह खबर सुनकर कि उनके सात और नौ साल के मासूम बच्चों ने भी भय और लोभ के प्रभाव में आकर अपना धर्म नहीं छोड़ा, अकाल पुरुष को धन्यवाद दिया और कहा "तेरी अमानत तुझको सौंप कर, आज मैं सुर्खरू (प्रसन्न) हूं।

यहां पर ही गुरू जी ने बादशाह औरंगजेब के नाम एक पत्र लिखा। यह ऐतिहासिक पत्र जफरनामा (अर्थात् विजय पत्र) के नाम से प्रसिद्ध है। गुरू जी ने इस पत्र में अत्याचार के विरुद्ध हथियार उठाना जायज़ करार दिया। औरंगजेब को उसके सेनाधिकारियों द्वारा धोखे और, मक्कारी के साथ अनगिनत सिखों और दोनों मासूम बच्चों के मारने का भी जिकर किया और साथ ही यह भी दावा किया कि खालसा अजेय है। यह पत्र लेकर भाई दयासिंह और भाई धर्म सिंह उस समय दक्षिण भारत के ठहरे हुए औरंगजेब को मिलने के लिये चल पड़े।

गुरू जी दीनों से चलकर खिदराने के ढ़ाब पहुंचे। मुगल फौजों से गुरू जी का अन्तिम युद्ध यहीं हुआ था। आनन्दपुर के घेरे के समय गुरू जी को बेदावा दे कर, वापस आने वाले सिखों ने माई भागों जी के नेतृत्व में युद्ध करते हुए वीर गति प्राप्त की। खालसा की विजय हुई। गुरू जी इन सिखों की बहादुरी, वफादारी और भूल का प्रायश्चित करने के ढंग से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने इन सिहों को और माई भागो को "मुक्त होने" का सम्मान दिया। अरदास के बीच इन ही चालीस मुक्त सिहों को प्रतिदिन याद किया जाता है। इस स्थान का नाम ही मुक्तसर हो गया और यह शहर फरीदकोट जिले में स्थित है।

मुगल सेना हार कर भाग गई थी, फिर भी गुरू जी ने यहां टिकना उचित नहीं समझा। वहां से गुरू जी तलवंडी साबो चले गये। गुरू जी यहां पर लगभग एक साल ठहरे। सिख संगतें फिर जुड़ने लगी। सिख सेना फिर संगठित होने लगी। भाग दौड़ में नष्ट हो गये ग्रंथों की रचनाओं को एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया। भाई मनी सिंह से आदि ग्रन्थ लिखवाकर, उसमें गुरू तेगबहादुर की वाणी शामिल करके उसे गुरू ग्रन्थ का रूप दिया। गुरू जी जितने समय तक यहां रहे, तलवंडी साबो शिक्षा का केन्द्र बन गया। गुरू जी ने इस नगरी को 'गुरू की काशी' कह कर सम्मानित किया। सिखों का पांचवा तखत श्री दमदमा साहिब यहीं पर स्थापित है।


DEVENDER. Singh

जफरनामा पढ़कर औरंगजेब का दिल पसीज गया। उसने गुरू जी को बुला भेजा। पर गुरू जी ने पहूंचने के पहले ही 1707 ई. में उसका देहान्त हो गया।

बहादुर शाह जो गुरू जी के दरबारी कवि भाई नन्द लाल गौआ का शिष्य था, के साथ गुरू जी के अच्छे संबंध थे। राजगद्दी के लिये लड़ी गई लड़ाई में गुरू जी ने बहादुर शाह के भाइयों के खिलाफ बहादुर शाह के पक्ष में अपनी सेना भेजकर उसकी मदद की।

बादशाह बनने के बाद बहादुर शाह ने आगरे के दरबार में गुरू जी को राजकीय सम्मान दिया और उन्हें खिलआत पेश की और उनके साथ अन्याय करने वाले सैनिक अधिकारियों और सूबों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करने का आश्वासन दिया।

जब बहादुर शाह ने दक्षिण में विद्रोह को दबाने के लिये दक्षिण की ओर सैनिक अभियान प्रारंभ किया, तो उसने गुरू जी को भी साथ चलने के लिये मना लिया।

सन् 1708 के सितम्बर के महीने नादेड़ नामक स्थान पर जब शाही फौजों ने डेरा डाला गुरू जी ने बादशाह के साथ आगे न जाने का निश्चय कर लिया। गोदावरी नदी के किनारे एक बहुत ही रमणीक स्थान को अपने डेरे के लिये चुना। हमेशा की तरह वहां पर सवेरे शाम दीवान सजते। चारण सिख शूर वीरों की गाथा गाते। गुरू जी उपदेश देते। नजदीक के जंगलों में सिख शिकार खेलने के लिये चले जाते। इस कारण इलाके के वैरागियों से उनका अकसर झगड़ा हो जाता।

माधोराम वैरागी, वैरागियों का प्रमुख, ऋद्धियों और सिद्धियों का स्वामी होने के कारण बड़ा अभिमानी था। उसके कठोर स्वभाव का बड़ा आंतक था। साधारण लोगों का तो कहना ही क्या, वह संतों और महापुरुषों का अपमान करने में ही अपना मान और बड़ाई समझता था।

एक दिन गुरू जी उसके आश्रम में जाकर, उसके आसन पर बैठ गये। उस समय माधोराम कहीं बाहर गया था। सारे आश्रम में भय और आंतक का माहौल छा गया। माधोराम के साथ संबंध रखने वाले तथा अन्य लोग उसके क्रोध से डरकर, काँपने लगे थे।

किसी ने माधोराम से जा कहा। वह उसी समय भागा भागा आया। गुरू जी को अपने आसन पर बैठा देखकर वह आग बबूला हो गया। उसके अपनी ऋद्धियों और सिद्धियों के जोर से गुरू जी को आसन सहित पलट कर मारने के अनेकों प्रयत्न किये। जब उसका कोई भी चमत्मकार काम नहीं आया तो वह गुरूजी के चरणों में गिर गया और कहा "मुझको क्षमा करो, मैं आप का बंदा (दास) हूं"।


DEVENDER Singh

गुरू जी की प्रेरणा से माधोराम वैरागी जीवन त्याग कर सिख बन गया। उसका नाम गुरू बख्श सिंह रखा गया। पर वह अपने आपको गुरू का बंदा ही कहता और कहलाता। इस लिये इतिहास में उसका नाम बन्दा सिंह बहादुर ही प्रसिद्ध हुआ।

गुरू जी ने बन्दा सिंह को अपने पांच तीर देकर, पांच सिंखों के नेतृत्व में उसे पंजाब भेजा। भिन्न भिन्न इलाकों की संगतों की हुकुमनामे भेजे गये कि कि अन्याय और अत्याचारों का नाश करने के लिये बन्दा सिंह के नेतृत्व में सभी सिख संगठित हो। गुरू जी ने एक निशान (झंड़ा) और एक नगाड़ा, जो सत्ता के मूल चिन्ह माने जाते हैं, बंदा सिंह को प्रदान किये।

गुरू जी ने अपनी धर्मपत्नी साहिब कौर को, जो दक्षिण यात्रा के समय गुरू के साथ रह रहीं थीं, पांच शस्त्र देकर भाई मनीसिंह तथा अन्य कुछ सिखों के साथ दिल्ली के लिये रवाना कर दिया, जहां पर गुरू जी की दूसरी पत्नी सुन्दरी जी निवास कर रहीं थीं।


DEVENDER SINGH

माधोराम वैरागी के सिख बन जाने के बाद इलाके के लोगों में गुरू जी का प्रभाव काफी बढ़ गया। कई वैरागी साधु तथा अन्य असंख्य लोग, अमृत-पान करके सिख बनने लगे। सवेरे शाम जुड़ने वाले दीवानों (सभाओं) में संगतों की गिनती प्रति दिन बढ़ने लगी। दीवान में गाई जाने वाली वीर-गाथा सुन सुन कर उत्साही नौजवानों का खून खौलने लगता। वे अमृत-पान करके हथियार बन्द होकर गुरू जी की सेना में शामिल हो जाते।

बड़ी दूर दूर से पैदल चलकर हर धर्म, कौम और जात के मनुष्य सर्वस्व दान करने वाले गुरू जी के दर्शन करने आते, जिन्होने अपने पिता, माता, चार पुत्र, और अन्य असंख्य सगे संबंधियों को सिख धर्म के लिये, बलिदान कर दिया और इसके बावजूद अपने चेहरे पर कोई शिकन नहीं आने दी। गुरू जी प्रायः यही कहते थे; "चार मुये तो क्या हुआ, सुत जीवित कई हजार" (अर्थात् चार पुत्र शहीद हो गये, तो क्या हुआ, मेरे हजारों पुत्र (सिंह या सिख) जीवित हैं)।

एक दिन गुरू जी गुरू-दरबार में पूरी सज धज के साथ बैठे थे। चारण सिंह शूर वीरों की गाथा गा रहे थे। चारणों ने गुरू जी की प्रशंसा में कुछ ऐसे शब्द कहे जो गुरू जी को अच्छे नहीं लगे। गुरू जी ने चारणों की ओर मुखातिब होकर संगत में इकट्ठे हुए सिखों की ओर इशारा करते हुए कहा इन्ही (संगत में इट्ठे हुए सिखों की) की महिमा का बखान करो, क्यों कि मैं जो कुछ भी हूं इन्हीं लोगों की कृपा के कारण हूं। "इन ही की कृपा से सजे हम हैं, नहिं मो से गरीब करोड़ पड़े।" दीवान में उपस्थित सभी संगतों ने इस बात को बहुत सराहा और ऊंची आवाज में कहा "धन्य गुरू गोबिन्द सिंह साहिब"।

गुरू जी ने चारणों को फिर अपनी प्रशंसा में अधिक कुछ कहने का मौका नहीं दिया।

एक दिन सायंकाल के समय शाम के दीवान के बाद गुरू जी अपने तम्बू में आराम करने के लिये लेटे हुए थे। एक पठान, जो पिछले कई दिनों से सवेरे शाम दीवान में उपस्थित होता था, गुरू जी को अकेला देख, पीठ पीछे से हमला करके उनकी पसलियां में छुरा घोंप दिया।

भागकर जाते हुए आक्रमण कारी को गुरू जी ने मार गिराया और शोर होने के कारण उसके दूसरे साथी सिखों के हाथ में आ गये।

पूछताछ के दौरान पता लगा कि सूबा सरहिंद बजीर खां ने इन पठानों को गुरू जी को कतल करने के इरादे से बहुत दिनों से गुरू जी के पीछे लगा रखा था। गुरू जी की


Devender Singh

बादशाह से बढ़ती मित्रता से सूबा सरहिद को अपनी मृत्यु नजर आती थी। आक्रमणकारी पठान का नाम जमशीद खान था।

गुरू जी पर हुए कातिलाना हमले की खबर जब बादशाह के खेमें में पहुंची, तो बादशाह शाही हकीमों को साथ लेकर गुरू जी के हॉलात जानने के लिये उनके डेरे पर आया। शाही हकीम की मरहम पट्टी और दवा-दारु के कारण, भारी जखम कुछ दिनों में ही भर गया और केवल जखम का निशान मात्र बाकी रह गया। कुछ दिनों के बाद गुरू जी सवेरे शाम दीवान में उपस्थित होकर पहले की तरह गुरू उपदेश देने लगे। गुरू जी पर हुए इस कातलाना हमले से उनके बच जाने पर संगतों ने बड़ी खुशी मनाई।

किन्तु कुछ दिनों के बाद जब गुरू जी एक कड़ी कमान का चिल्ला चढ़ाने लगे तो जोर लगाने के कारण, उनका जखम फट गया।

जखम फिर सी दिया गया। पर जखम का रिसना बन्द नहीं हुआ। अपना अन्तिम समय नजदीक आया जान कर गुरू जी ने श्री ग्रन्थ-साहब को माथा टेक कर श्री ग्रन्थ साहिब को गुरू का पद दिया। देहधारी गुरू परम्परा का अन्त कर दिया। गुरू जी ने खालसा पंथ को आदेश दिया; परचा शब्द का, पूजा अकाल की और दर्शन खालसा का।

18 अक्तूवर 1708 को गुरू गोबिन्द सिंह परम ज्यौति में विलीन हो गये।

उद्धरण

1. माखोवाल आजकल श्री आनन्दपुर साहब के नाम से जाना जाता है। यह पंजाब राज्य के जिला रोपड़ में नंगल की ओर जाती हुई सड़क पर स्थित है।

2. सूखीगिरी को निकालने के बाद, बीच में टूटने के कारण नारियल के छिलके जो दो आधे गोल टुकड़े रह जाते हैं, उन्हें कुज्जे कहते हैं। पंजाब के गावों और कस्बों में आज भी नये जन्म लेने वाले बालक तथा नव विवाहित वधू के आगमन पर सगुन के लिये कुज्जे में चीनी या मिश्री भर कर दी जाती है।

   बहुत से सिख इतिहासकारों ने इस घटना का जिकर करते हुए लिखा है कि पीर भीखन शाह ने पानी और दूध से भरे हुए दो कुज्जे बाल गोबिन्द को यह जानने के लिये दिये, कि वह हिन्दू का पक्ष धर होगा या मुसलमान का। हमें यह बात नहीं जंचती। गुरू-घर से सम्पर्क रखने वाले पीर फकीर अच्छी तरह जानते थे कि गुरू-घर में धर्म, जात और जनम के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं था। "सब महि जोत जोति जो है सोए" के प्रचारक सिख गुरू सारी मानवता के पक्ष धर थे उनके लिये कोई बैरी और पराया नहीं था। पांचवे गुरू अर्जुन देव जी ने आदि-ग्रन्थ की स्थापना के समय मुसलमान पीरों, फकीरों, हिन्दू भक्तों और अछूत माने जाने वाले महापुरुषों की वाणी को गुरूओं की वाणी की तरह आदर और सम्मान दिया था। सिखों के विश्व प्रसिद्ध धर्म स्थान श्री हरि मन्दिर साहिब (गोल्डन टेम्पेल) की नींव उस समय के प्रसिद्ध मुसलमान पीर साईं मियां मीर ने रखी थी।

3. इस स्थान पर आज कल गुरूद्वारा शीश गंज स्थापित है।

4. इस स्थान पर आज गुरूद्वारा रकाव गंज साहिब है। यह स्थान भारत के संसद भवन के सामने है। यहां पर लक्खीशाह बंजारे की स्मृति में एक शानदान दीवान हाल बनाया गया है।

5. गुरू जी की मांग पर अपना शीश हथेली पर रखकर, अपना शीश समर्पित करने वाले पांच सिख थे;, भाई दया राम खत्र, लाहौर निवासी, भाई धरम दास जाट, दिल्ली के निवासी, भाई मोहकम चन्द्र छींपा, द्वारिका (गुजरात) के निवासी, भाई साहिब

चन्द्र नाई बीदर (कर्नाटक) निवासी और भाई हिम्मत राम, झीमर, जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा) निवासी।

6. अमृत पान करने के बाद पांच प्यारों के नाम, भाई दयासिंह, भाई धरम सिंह, भाई मोहकम सिंह, भाई साहिव सिंह, भाई हिम्मत सिंह और गुरू जी, गुरू गोबिन्द राय के गुरू गोबिन्द सिंह हो गये।

1668 26 दिसम्बर को पटना में जन्म।

1672 फरवरी मास में पटना से विदाई।

—जुलाई के मध्य में लखनौर (नाना के गांव) पहुंचना।

—सितम्बर मास में माखोवाल गुरू पिता के पास पहुंचना।

1675 गुरूगद्दी पर विराजमान हुए।

1675 11 नवम्बर को दिल्ली के चांदनी चौक में गुरू तेगबहादुर की शहादत।

1677 में बीबी जीतो जी से विवाह।

1680 राजा भीमचन्द की सेना से पहली मुठभेड़।

1682-85 जपु साहिब की रचना।

1685 बीबी सुन्दरी से विवाह।

—15 मई को माखोवाल छोड़कर, सिरमौर रियासत के राजा मेदनी प्रकाश की विनती पर सिरमौर में प्रवेश।

—6 अगस्त को पाउंटा शहर की स्थापना।

1686 माता सुन्दरी जी की कोख से साहिबजादा अजीत सिंह का जन्म।

1688 3 अक्तूबर को भंगानी का युद्ध।

1689-90 आनन्दगढ़, लौहगढ़, केसगढ़ और फतेहगढ़ किलों का निर्माण।

1690 20 मार्च को माता जीतो जी को कोख से साहिबजादा जुझार सिंह का जन्म।

1690 मार्च के अन्त में नदौन का युद्ध।

1694 खानजादे की कमान में दुश्मनों का आनन्दपुर विफल हमला।

1697 14 जनवरी को साहिबजादा जोरावर सिंह का, माता जीतो जी की कोख से जन्म।

1699 22 फरवरी को साहिबजादा फतहसिंह का माता जीतो जी को कोख से जन्म।

— बीबी साहिब देवा से विवाह।

1699 13 अप्रैल, खालसा पंथ की साजना।

1700 राजा भीमचन्द और पहाड़ी राजाओं की सेना द्वारा आनन्दपुर पर हमला और लड़ाई।

1701 आनन्दपुर छोड़कर निरमोह में निवास।

1702-03 आनन्दपुर की सुरक्षा के लिए किलाबंदी मजबूत करना और दुश्मनों का आनन्दपुर पर हमला।

1704 21 दिसम्बर को आनन्दपुर का किला खाली करने का फैसला और सरसा नदी के किनारे पर दुश्मन फौजों के साथ युद्ध। माता गुजरी और छोटे साहिबजादों का बिछड़ना।

—23 दिसम्बर को चमकौर की गड़ी का युद्ध। साहिबजादा अजीत सिंह और जुझार सिंह की शहीदी। खालसे के गुरूमते को प्रवान करके गढ़ी में से बच निकलना।

—24 दिसम्बर, माछीवाड़े के जंगलों में पहुंचना।

—25 दिसम्बर 'ऊंच का पीर' बन के बच निकलना।

—27 दिसम्बर को माता गुजरी और छोटे साहिबजादों की शहीदी।

1705 मई में ज़फरनामा (फतेह की चिट्ठी) बादशाह औंरगजेब को भेजना।

—नवम्बर को तलवन्ड़ी साबो (दमदमा साहिब) में पहुंचना।

1706 ग्रंथ साहिब की बीड़ तैयार करवाना।

1707 बादशाह औंरगज़ेब की मौत

—23 जुलाई को बादशाह बहादुरशाह से भेंट। नवम्बर तक उसके साथ रहना और नादेड़ तक जाना।

—सितम्बर में बादशाह का साथ छोड़ नादेड़ टिकने का फैसला।

1708 बन्दा वैरागी से भेंट। बन्दे का अमृतचख कर सिख बनना।

—पठान जमशीद खान द्वारा गुरू जी की हत्या का विफल यत्न।

—18 अक्तूबर को गुरू ग्रन्थ को गुरू गद्धी पर विराजमान कर देहधारी गुरू की परम्परा को समाप्त करना और परम ज्योति में विलीन होना।